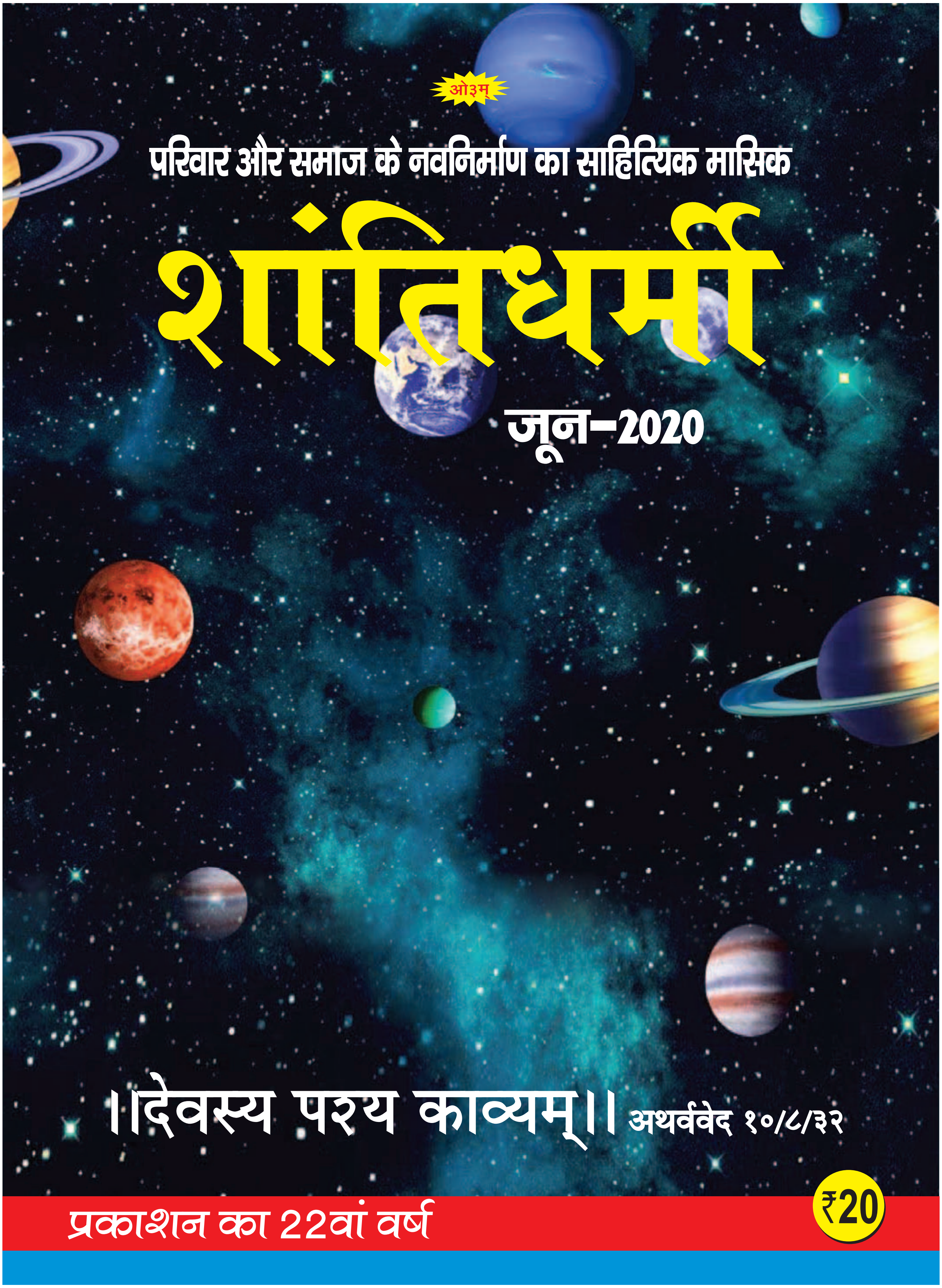

ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का साहित्यिक मासिक

शांतिधर्मी

जून-2020

।।देवस्य पश्य काव्यम्।। अथर्ववेद १०/८/३२

प्रकाशन का 22वां वर्ष

₹20

माँ की स्मृति

माता रोशनी देवी (धर्मपत्नी स्व० श्री चंद्रभानु आर्य, भजनोपदेशक, हिंदी सत्याग्रह जेल यात्री व संस्थापक शांतिधर्मी) ने २४ जून २०१८ को ७४ वर्ष की अवस्था में शरीर छोड़ा।

माँ अत्यंत धार्मिक, सात्त्विक और ईश्वर भक्त थीं। स्व० पिताजी के प्रायः प्रचारार्थ बाहर रहने के कारण अपनी सन्तान को उत्तम धार्मिक संस्कार देना उन्हीं का कार्य था। उन्होंने एक तपस्विनी का जीवन जीते हुए समस्त अभाव, संकटों का वीरता और धैर्य से सामना किया और सन्तान निर्मात्री के रूप में अपना जीवन धन्य किया।

माँ का जन्म १९४४ में ग्राम सनपेढा सोनीपत में हुआ था। बाद में इनका परिवार ग्राम कैथ शाहपुर जिला पानीपत में निवास करने लगा। नानाजी श्री मांगेराम वर्मा व नानी श्रीमती पानपोरी परम्परागत विचारों के अत्यंत धार्मिक दम्पती थे। इनके घर में ही मन्दिर था जिसमें प्रतिदिन दोनों समय सामूहिक आरती पूजा पाठ होता था। अपने माता पिता की सबसे बड़ी सन्तान रोशनी देवी पर इस वातावरण का प्रभाव पड़ा।

किशोरावस्था में ही आपका विवाह हो गया। जल्दी ही आपने नये वातावरण में अपने आप को ढाल लिया। आप यज्ञ, सन्ध्या, अतिथि सेवा, वैदिक सत्संग व गोसेवा में विशेष रूचि लेती थी। जब तक शरीर में सामर्थ्य रही, माताजी ने घर में गौ रखी। अनेक वैदिक विद्वानों, साधु संन्यासियों, उपदेशकों और कार्यकर्त्ताओं का घर आना जाना लगा रहता। आप पूरी श्रद्धा से उनकी भोजन व्यवस्था करती और अपने बच्चों के साथ उनसे सत्संग उपदेश ग्रहण करती थीं। परिवार में जो भी संस्कार, विचार और उत्तम परम्पराएँ प्रचलित हैं उनमें माँ का सर्वोपरि योगदान है। वे अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण उत्तम जीवन व्यतीत कर रही होंगी। माँ का ऋण कभी चुकाया नहीं जा सकता।

शांतिधर्मी परिवार

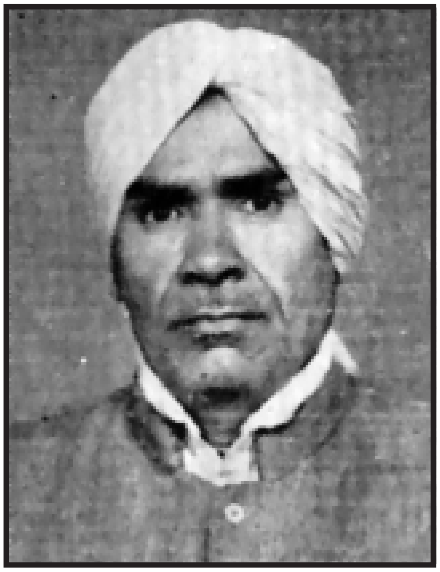

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक

पं० चन्द्रभानु आर्य

सम्पादक : सहदेव समर्पित

(चलभाष **09416253826**)

उपसम्पादक : सत्यसुधा शास्त्री

प्रबंध संपादक : सुभाष श्योराण

आदरी सम्पादक : यज्ञदत्त आर्य

सह-सम्पादक : राजेशार्य आट्टा

डॉ० विवेक आर्य

विधि परामर्शक : डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट

सहयोग : आचार्य आनन्द पुरुषार्थी

श्रीपाल आर्य, बागपत

महेश सोनी, बीकानेर

भलेराम आर्य, सांघी

कर्मवीर आर्य, रेवाड़ी

कार्यालय व्यवस्थापकः रविन्द्रकुमार आर्य

कम्प्यूटर सज्जा : बिशम्बर तिवारी

सहयोग राशि

एक प्रति	:	२०.०० रु०
वार्षिक	:	२००.०० रु०
दस वर्ष	:	१५००.०० रु०

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शान्तिधर्मी

प्रकाशन का बाईसवां वर्ष

जून, २०२० ई०

वर्ष : २२ अंक : ५ ~~आषाढ़~~ २०७७ विक्रमी

स ष्टि संवत्-१६६०८५३१२१, दयानन्दाब्द : १६७

वैदिक धर्म प्रचारक : पण्डित रामनाथ (संस्मरण) ६

राजा का नमो नैवेद्य (अनुशीलन) ७

सुख का मूल : धर्म (पुनर्प्रकाशन शांतिप्रवाह) ८

राष्ट्र के लिये घातक है जातिवाद (सामाजिक चिन्तन) १०

वैदिक आर्य संस्कृति का मूल सारस्वत प्रदेश (इतिहास) १२

शठे शठ्यम् समाचरेत् (नीति) १४

औरों को देने में निहित स्वयं की है प्रसन्नता (जीवन दर्शन) १६

सन्तान के जीवन में माता पिता का स्थान (परिवार) १८

अवध्या गाय का हनन मत करो (आत्मिक उन्नति) २२

ईशोपनिषद् : महात्मा नारायणस्वामी कृत व्याख्या २४

मांस मनुष्य का भोजन नहीं है (स्वास्थ्य चर्चा) २७

कविता : ६ देवदत्त 'देव', सहदेव समर्पित, पुष्पलता आर्या

कथा : नाट्य रूपान्तरण-२० अस्तित्व-१६ आर्यमल्ल चौधरी धनत्तर सिंह-२१ महाराणा की रोटी, भगतसिंह के दादाजी-३०

स्तम्भ : बालवाटिका-२६, भजनावली-३१, बिन्दु बिन्दु विचार-३४

कार्यालय :

सम्पादक शांतिधर्मी, **पो बाक्स नं० 19**

मुख्य डाकघर जींद 126102

७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक, जीन्द-१२६१०२ (हरि०)

दूरभाष : 9996338552

ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

❒सहदेव समर्पित

मनुष्य-धर्म

धर्म मनुष्य के जीवन का आधार है। यह आर्य संस्कृति में ओतप्रोत है। धर्म शब्द के लिये ही इतना सम्मान हमारे संस्कारों में है कि एक सामान्य व्यक्ति भी धर्म के आचरण को अच्छा समझता है। वह धर्म को अच्छा समझता है और धर्म के विपरीत आचरण को पाप समझता है। यह बात पढ़े-लिखों को समझ नहीं आती। वे कारण अकारण कहते रहते हैं कि धर्म की मनुष्य के जीवन में कोई आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि 'पढ़े-लिखों' को यही पढ़ाया गया है। उनमें से कोई अधिक उदार होता है तो यह कह देता है कि इंसानियत ही सबसे बड़ा धर्म है। अब उसको यह ज्ञात नहीं है कि उसकी इस बात से धर्म का कोई विरोध नहीं है। बल्कि धर्म ही मनुष्यता है। मनुष्य बनना और धर्म का पालन करना- दोनों एक ही बात हैं। वेद का एक प्रसिद्ध मन्त्रांश है- मनुर्भव! कि मनुष्य बनो। यह आदेश किसको दिया? मनुष्य को। तो मनुष्य बनने का क्या अर्थ है? कोई विशेष बात ही तो वेद ने कही है।

वेद ने जो मनुष्य बनने का उपदेश दिया, वहीं इसके अर्थ भी बताए और मनुष्य बनने के स्वाभाविक उपाय भी बताए हैं। मनुष्य शरीर को प्राप्त कर लेना ही मनुष्य बनना नहीं है, बल्कि मनुष्य के स्वभाव को ग्रहण करना ही मनुष्य बनना है। मनुष्य का निर्वचन बताया गया है- मत्वा कर्माणि सीव्यति- जो विचार कर कार्य करता है, जो विचारपूर्वक कार्य करता है। पशु= जो केवल देखता है, मनुष्य= जो विचारता भी है। यह विचार ही मनुष्यत्व का आधार है। मन में जो विचार है वह किसी को नहीं दीखता। मनुष्य के बोलने से पता चलता है कि उसके मन में क्या है! उसके व्यवहार से ज्ञात होता है कि वह कैसा सोचता है। जो मन में होता है, वाणी और व्यवहार से वही प्रकट होता है। इसलिए विचारों को शुद्ध और पवित्र रखना ही मनुष्य बनने का श्रेष्ठ और सरल उपाय है।

परमेश्वर ने मनुष्य को विचार की शक्ति दी है। यह विचार शक्ति मनुष्य को उठाती भी है और गिराती भी है। यह ताना बाना बड़ा उलझन भरा है। विचार हमारे कर्मों के बीज हैं और हमारे कर्मों से हमारे संस्कार भी बनते हैं। इसलिए विचार कर कर्म करना और विचारों को पवित्र बनाए रखना= यानि मनुष्य बनना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

कर्म ही हमारे अनन्त जीवन का आधार बनते हैं। कर्म के फल के संबंध में सब कुछ स्पष्ट है। हम प्रतिक्षण देखते हैं कि कर्म का फल मिलता ही मिलता है। फल कब मिलेगा, इसमें अन्तर हो सकता है, पर फल मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कर्म का जो प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है, वह इस बात का प्रमाण है कि बीज बो दिया गया है। कोई फसल चार छः महीने में मिल जाती है, कोई साल दो साल में और कोई फल आठ दस साल में।

जब विचार ही हमारे जीवन का आधार हैं तो इनको सुधारना हमारा प्राथमिक कर्त्तव्य है। हमारे संकल्प पवित्र होंगे तो हमारा जीवन निरन्तर पवित्रता की ओर बढ़ेगा। हमारे संकल्प शुभ हों, हमारे विचार, संस्कार, चिन्तन पवित्र हों- हमारा पूरा प्रयास इस दिशा में होना चाहिए। यदि हम और सारे प्रयत्न करते हैं और केवल यही प्रयत्न नहीं करते तो हमारे जीवन में और कुछ हो जाए लेकिन हम सुख और शांति नहीं प्राप्त कर सकते। संकल्प की दिव्य शक्तियों को पहचानकर ही हम दिव्य जीवन के अधिकारी हो सकते हैं।

पूरा का पूरा वैदिक दर्शन इस बात पर टिका हुआ है कि हमारे संकल्प, हमारे विचार शुद्ध और पवित्र कैसे हों। हमारे ऊपर जन्म-जन्मान्तरों के अनेक प्रकार के मल चढ़े हुए हैं। हमारी अनेक प्रकार की वृत्तियाँ (योग की भाषा में पांच) हैं, यह दुनिया तो एक बाजार है, जो कुछ हम खरीदेंगे वह मिल ही जाएगा। यदि हम अपने आप को वृत्तियों के अधीन छोड़ देंगे तो वे जहाँ चाहेंगी हमें ले जाएँगी। जहाँ हम जाना चाहते हैं=यदि हम वहाँ **जाना ही** चाहते हैं तो हमें अपनी वृत्तियों को अपने अधीन करना होगा। गाड़ी को चालक चलाएगा तभी तो वह गन्तव्य तक पहुंचेगा। यदि लक्ष्य का निर्धारण गाड़ी के अधीन छोड़ दिया गया तो वह तो वहीं ले कर जाएगी जहाँ वह जा सकती है। यह गाड़ी है, मैं चलाने वाला हूँ, यह समझना है। अविद्या है, मिथ्याज्ञान है तो दोष हैं, दोष हैं तो प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति है तो जन्म है, जन्म है तो दु:ख है।

योग किसलिए है- वृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए। यज्ञ, सत्संग, स्वाध्याय किसलिए हैं- संकल्पों को, विचारों को शुद्ध/पवित्र बनाने के लिए। सारे आध्यात्मिक प्रयत्न विचारों को शुद्ध करने के लिए ही होते हैं। जो मनुष्य 'मनुष्य' बनना चाहेगा वह अपने विचारों में पवित्रता लाने का प्रयत्न करता रहेगा। शुभ संकल्पों से मनोबल बढ़ेगा। निरन्तर आत्मनिरीक्षण करते रहने से दूसरों के प्रति व्यवहार का परिष्कार होता रहेगा। 'मनुष्य' का धर्म व्यवहार में झलकेगा। वह संसार और समाज के लिए उपयोगी व लाभकारी बनेगा। उसका मनुष्य जन्म लेना सार्थक हो जाएगा।

आपकी सम्मतियाँ

भारतीय संस्कृति, संस्कार और जीवनशैली को संरक्षित एवं पुनर्जीवित करने के लिए आप यानी शान्तिधर्मी परिवार जिस जीवंतता और समर्पण के साथ लगा हुआ है, उस जीवंतता और समर्पण के लिए कोटि-कोटि प्रणाम, सहदेव भाई। साधुवाद!

रामफलसिंह खटकड़, (संरक्षक हिन्दी साहित्य प्रेरक संस्था)
ग्राम पोस्ट खटकड़, जिला जींद

शांतिधर्मी का मई २०२० अंक मिला, धन्यवाद! मुखपृष्ठ पर जंगली जीवों के सौहार्द को देखकर महसूस हुआ कि स्वयं को सबसे समझदार मानने वाले हम मनुष्य अपने मतभेदों को दूर कर इसी तरह शांति से क्यों नहीं रह सकते? आत्मचिंतन में संपादकीय 'भागम-भाग' कटाक्षात्मक तथा शिक्षाप्रद रहा। हमारी आज की जीवनशैली भौतिकतावाद की प्रतियोगिता की बंदी बनकर रह गई है। हर काम में जल्दी-जल्दी, हाय हाय, बेसब्री तथा बेचैनी है। आपसी मानवीय संबंध एक ड्रामा सा बनकर रह गए हैं। हमारे पास जीवन यापन करने के लिए सब कुछ है उसके बावजूद हमारे पास कुछ भी नहीं है। हम संपादकीय से सहमत हैं कि वर्तमान कोरोना वायरस महामारी ने हमें यह समझा दिया है कि हम अपनी इच्छाओं में कटौती करके और परमात्मा का नाम लेकर सुख चैन से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। डॉक्टर विवेक आर्य का लेख 'शांतिधर्मी : एक अभियान' अच्छा लगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रतिष्ठित पत्रिका न केवल बहुत से लेखकों और पाठकों को मंच प्रदान करती है बल्कि ज्ञान, नैतिकता, सभ्यता, परंपरा तथा देशभक्ति को भी बढ़ावा देती है! श्री चंद्रभानु आर्य का लेख 'यज्ञ का रहस्य' जानकारी बढ़ाने वाला था! डॉ० श्रीमती अनीता ढांडा की कविताएं प्रशंसनीय हैं। डॉ० विवेक आर्य 'आर्यसमाज के करुणा वारियर्स' उन महापुरुषों का वर्णन करता है जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में मानवता की जी जान से सेवा की। महीपाल आर्य का लेख भी ज्ञान वर्धक रहा! दयाशंकर गोयल की कविता 'आशावाद' प्रेरणादायक है! बाल वाटिका दिलचस्प, ज्ञानवर्धक, मनोरंजक तथा दिमाग की कसरत कराने वाली है।

प्रोफेसर शामलाल कौशल
मकान नंबर ९७५ बी,
ग्रीन रोड, रोहतक-१२४००१ (हरियाणा)

आत्म-चिन्तन 'भागम-भाग' में आपने सत्य कहा भ्राता जी, लक्ष्य को भूल, भूल-भुलैया में भूल गए सब कुछ! आत्मनिरीक्षण, आत्मचिंतन, आत्म-विश्लेषण का समय मिला, जाग सकें तो कल्याण संम्भव है।

विनीता आर्या, मंत्री आर्यसमाज
जींद शहर-१२६१०२

मई अंक के सम्पादकीय में आपने जीवन के मूल उद्देश्य एवं बदलती जीवनशैली का सटीक और निष्पक्ष वर्णन किया है। उत्तम भ्राताश्री!

अश्वनीकुमार रुहिल,
छोटूराम किसान कालेज, जींद-१२६१०२

उफ! यह कृतघ्नता! राजेशार्य आट्टा द्वारा वर्णित हुतात्माओं को शत शत नमन! मेरा भारत कितना कृतघ्न निकला! वीर की मां, बहन के भी समुचित भरण-पोषण की व्यवस्था नहीं कर सका। उनकी सुध लेने वाले आचार्य भगवान देव जी को नमन।

राजकुमार माहेश्वरी
रामपुर, उ० प्र०

कितने दु:ख का विषय है कि आज लोग सत्ता के लिए लड़ाई लड़ते, जिन्होंने देश के लिए कुरबानी दी उनको एक क्षण भी याद नहीं करते। (उफ! यह कृतघ्नता! राजेशार्य आट्टा) मेरा शत-शत नमन देश के दीवानों को।

डॉ० मनजीत
ग्राम पोस्ट भिड़ताना, जिला जींद

(उफ! यह कृतघ्नता!) पढ़ कर मर्मांतक पीड़ा हुई एक बलिदानी को उस समय के समाज ने सिवाय दु:ख के कुछ नहीं दिया और अब के समाज ने मात्र उपेक्षा! इसके बावजूद उनका अनुपम बलिदान! कोटि कोटि नमन!

पुष्पलता आर्या, (कवयित्री)
चरखी दादरी (हरियाणा)

सम्पादकीय भागम-भाग में सत्य-कथन है कि एक परिवार-एक घर में रहते हुए भी लोग एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं- दुष्टों की संतान के घर से जुड़ जाने के कारण। न परस्पर कभी संवाद-न कभी हंसी ठठ्ठा। खुशियों की जड़ पर गिर गया मठ्ठा।

महाशय बलवन्त सिंह आर्य
झबरेड़ा, रुड़की

संस्मरण

ofSd /keZizpkjd
if.Mr jkeukFk fl)kUr fo'kkjn

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना,
तुम्ही सो गए दास्तां कहते-कहते।।

मेरे दादाजी स्व० श्री रामनाथ 'सिद्धांत विशारद' जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में महोपदेशक का कार्य किया करते थे। मेरे दादा जी आर्यसमाज के प्रचारकों की उस परम्परा में से थे, जिनमें आर्यसमाज के प्रति समर्पण, त्याग और जुनून कूट-कूट कर भरा था। उनका जीवन वैदिक धर्म के सिद्धांतों से ओतप्रोत हुआ करता था, या यूं कहें कि वे चलती-फिरती आर्यसमाज हुआ करते थे। जहां जाया करते, अपनी अमिट छाप छोड़ जाते थे। साधन कम होते थे पर लगन पक्की होती थी।

आँखों में दयानन्द :

मेरे दादा जी बताया करते थे कि उन्होंने उन आँखों को देखा है, जिन्होंने महर्षि दयानंद सरस्वती जी को देखा है। मुझे पता नहीं कि कोई व्यक्ति कैसे किसी दूसरे की आँखों से देखे व्यक्ति से कैसे इतना प्रभावित हो सकता है कि उसकी अभिव्यक्ति करने मात्र से रो पड़े।

आराम की चिन्ता नहीं :

उनमें गजब की लगन थी। आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व वेदप्रचार अधिष्ठाता और आर्य मर्यादा पत्रिका के सम्पादक स्व० श्री धर्मदेव जी लिखते हैं कि स्व० श्री रामनाथ जी में आर्यसमाज के प्रचार की लगन लगी हुई थी। वे एक घटना का जिक्र करते हैं कि एक बार स्व० श्री रामनाथ जी और हम सब किसी जगह आर्यसमाज के प्रचार के लिए कहीं जा रहे थे। स्टेशन से कार्यक्रम के आयोजन की जगह कई किलोमीटर दूर थी और उधर कार्यक्रम का समय भी निकला जा रहा था। स्व० श्री रामनाथ जी बिना किसी साधन का इन्तजार किए सिर पर पुस्तकों से भरा ट्रंक और अन्य सामान लेकर पैदल ही चल दिये। जब कार्यक्रम के आयोजन की जगह पहुंचे और कार्यक्रम के आयोजकों को इस बात का पता चला तो उन्होंने मेरे दादा जी को आराम करने और उनके प्रवचन के समय को सायं काल के लिए बदल देने का अनुरोध किया, पर मेरे दादा जी ने साफ मना कर दिया और मार्ग की थकावट की परवाह न करते हुए उपस्थित जनसमूह को अपना उद्बोधन दिया।

गाय का दूध :

एक बार मेरे दादा जी अपने पैतृक गांव पंजकोहा में गए हुए थे। मेरे दादा जी का दूध पीने का मन कर रहा था तो इन्होंने नानक नाम के व्यक्ति से, जो कि जाति से हरिजन था, के सामने दूध पीने की इच्छा व्यक्त की। आर्य समाज जात पात को नहीं मानता और ऊंच नीच का भेदभाव वेद विरुद्ध है। जो व्यक्ति इस बात का प्रचार प्रसार करता हो यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी। नानक अपने घर से गाय का दूध ले आया और मेरे दादा जी ने वह दूध पी लिया। जब गांव वालों को इस बात का पता चला तो गांव में स्व० श्री रामनाथ जी के विरुद्ध पंचायत बुलाई गई। इन्हें कहा गया कि आप ने नानक का दूध पिया है, आप पतित हो गए हैं। अब क्यों न आप को गांव से व बिरादरी से निकाल दिया जाए? तब मेरे दादा जी ने कहा कि मैंने तो गाय का दूध पीया है। आप भी गाय का दूध पीते होगें। मैंने तो नानक की गाय का दूध पीया है। इस तरह कई तर्क वितर्क हुए और अन्त में सभी मेरे दादा जी के आगे निरुत्तर हो गए और सभी को उनकी बात न केवल माननी पड़ी बल्कि इस घटना के कुछ काल बाद स्व० श्री रामनाथ जी ने अपने गांव पंजकोहा मे आर्यसमाज की स्थापना कर दी।

अजय कुमार सुपुत्र श्री देवेन्द्र कुमार
(बैंक में अधिकारी एवं गुरुकुल करतारपुर के पूर्व स्नातक)
262/4 कृष्णानगर, मोरिण्डा,
जिला रूपनगर, पंजाब- १४०१०१

अनुशीलन सामवेद : आग्नेय पर्व

jktk dk uek uo|

–लेखकः पं० चमूपति

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।
नरो हव्योभिरीडते सबाध अग्निरग्रषसामशोचि।।

ऋषि:–वसिष्ठ–अत्यन्त विशाल।

वह (अर्य:) सम्पत्ति–शाली (राजा) राजा (नमोभि:) नमो–नैवेद्य द्वारा (सम्–इन्धे) यज्ञाग्नि को प्रदीप्त कर रहा है, (यस्य) जिसकी, (घृतेन) घृत के रूप में (प्रतीकम्) उप–लक्षण–मात्र (आहुतम्) आहुति दी जाती है। (सबाध:) विघ्न–बाधाओं के उपस्थित होने पर तो (नर:) नर–नारी (हव्येभि:) हवियों द्वारा (ईडते) इसकी स्तुति करते ही हैं। पर (अग्नि:) अग्नि–देव (उषसाम्) उषाओं से (अग्रम्) पूर्व (अशोचि) प्रदीप्त किया गया है।

यज्ञ करने का अधिकार राजाओं का है। जिनकी संपत्ति अपनी हो, जो अपने धन–वैभव पर अधिकार रखते हों, वही इस आग को प्रदीप्त कर सकते हैं। जो धन के दास हों, यज्ञ का रास्ता उनके लिए निषिद्ध है। यज्ञ तो है ही–घर फूँक तमाशा देख। अपने फुँकते हुए घर का तमाशा देख सकने के लिए दिल चाहिए। यही दिल यजमान की संपत्ति है। धन चाहे थोड़ा हो और चाहे बहुत, दिल दरिया चाहिए। सच्चे हृदय से दी हुई कौड़ी का यहां वही मूल्य है जो कुबेर के अनगिनत खजानों का। इस मार्ग में तो भावना ही की बाजी है।

यज्ञ ऐंठ से नहीं किया जा सकता। धन दे और समझे कि मैंने लिया है। लेने वाले का अनुगृहीत हो। पाहुना तेरे घर भोजन करने आया है–यह उसकी कृपा है। भोजन तो उसके भाग्य में बदा ही था। अन्न–राजा ने उस अन्न पर उसी का नाम अंकित कर रखा था। तुझे मुफ्त का श्रेय देने के लिए उसने अपने भाग्य का अन्न तेरे चौके में ग्रहण किया। तू इस कृपा के लिए उसका आभारी हो। देता जा और झुकता जा। लज्जित हो कि पूरा नहीं दे रहा है। कवि के शब्दों में–

जान दी ही हुई उसी की थी
सच तो यह है कि हक अदा न हुआ।

रहिमन की उक्ति है–

देनेवाला और है, जो देता दिन रैन।
लोग मुझे दानी कहें, इस विधि नीचे नैन।।

हाथ उठा हुआ और आंखें झुकी हुई–यज्ञ की मुद्रा यही है। अन्न–दान, वज्र–दान, विनय–दान–यह तीन प्रकार का नमो–नैवेद्य यज्ञाग्नि की भेंट है। यजमान राजा होकर झुकता है या झुक–झुक ही कर राजा बनता है। यजमान का राज्य इसी नमो–नैवेद्य में है। यही उसकी बड़ी संपत्ति है। इसी का वह 'अर्य' है–धनी, संपत्ति–शाली राजा।

मनुष्य पर जब भी भीड़ पड़ती है, वह अग्नि–देव को पुकारता है। आपत्ति के समय कौन अपना धन– धान्य न्यौछावर करने को तैयार नहीं हो जाता? वह तो वास्तव में आपत्ति–देवता की पूजा है। आई बला टालने के लिए जप–जाप, यज्ञ–याग सभी करा लेते हैं। और यदि बिना धन के काम चल सके तो और भी गनीमत है। जहाँ भावना से काम चल सकता हो, वहाँ धन को काहे को हवा लगानी? पर खैर! कुछ खर्च आ जाय तो वह भी इच्छा से, अनिच्छा से कर लिया जाता हे। संकट के समय कृपण भी अतिव्ययी हो जाते हैं। पर अतिव्ययिता यज्ञ नहीं। यजमान थोड़ा दे अधिक दे, वह अतिव्ययिता नहीं करता। उसे इसकी अनुभूति ही नहीं होती।

यज्ञ तो उपलक्षण है। अग्नि–देव का प्यारा आहार घृत है। यज्ञ–याग में इसी की अधिक आहुति चलती है। परन्तु यह एक प्रतीक है–बाहर का चिह्न है। वास्तविक घृत तो हृदय का स्नेह है। यज्ञ श्रद्धा से किया जाए, प्रेम से, प्यार से। घृत की सच्ची आहुति वही है। डर के मारे कुछ दे भी दिया और फिर रोते रहे–यह यज्ञ नहीं है। चोर बनिए से लाख रुपया रखवा ले –इसे दान कौन कहेगा? आपत्ति के समय के यज्ञ–याग डाकू के सम्मुख नमो नैवेद्यरूपी धन की भेंट ही तो है।

वास्तविक यज्ञ तो दिन होने से पूर्व हो लेता है। उषा अग्नि–देव की पुत्री है। अग्नि प्रज्वलित होती है। हमारी यज्ञ भावना का सूर्य हृदय के क्षितिज से ऊपर उठ गया। हमारे अध्यात्म के उदयाचंल में अरुणाई– ही–अरुणाई छा गई। तब कहीं यह भौतिक उषा आध यात्मिक उषा का स्वागत करने के लिए पूर्व दिशा में प्रकट हुई। संसार के व्यवहार में हमें सफलता हो या असफलता। हमारे भाग्यों में भौतिक व्यवहार की भाषा में लक्ष्मी के दर्शन हों या अलक्ष्मी के। हमारी यज्ञ श्री: दिन के उदय होने से पूर्व की ही हमारे मस्तक पर आध्यात्मिक राज्य का मोरछल झुला रही, हम आर्य हैं। पुश्तैनी ''अर्य''। हमारे रास्ते में जो विघ्न–बाधा आती है, वह हमारे पांवों के आगे सिर झुकाने के लिए, हमारी प्रगति का कदम और तेज करने के लिए ही आती है, हमारे पैर ऊँचे–ही–ऊँचे उठते हैं और सिर नीचे–ही–नीचे होता चला जाता है। प्रत्येक सफलता अग्निदेव की देन है–यह सोच कर हम जहाँ आगे बढ़ते हैं, रुकावटों से घबराते नहीं, वहाँ साथ–साथ विनम्र भी होते जाते हैं। सच तो यह है कि हमारा आर्यत्व ही अग्नि–देव की उपासना का फल है। देवता की देन देवता के अर्पण कर देने में श्रेय की बात ही क्या है?

शांतिप्रवाह
(पुनर्प्रकाशन)
जुलाई २०१४

सुख का मूल धर्म

❑स्व० श्री चन्द्रभानु आर्य संस्थापक शांतिधर्मी

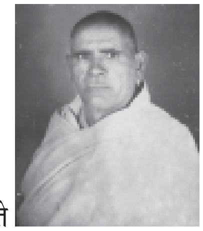

धन का महत्त्व वही समझ सकता है जिसने उसके लिए पसीना बहाया हो!

शास्त्र में कहा है- सुखस्य मूलं धर्मः। सुख का मूल धर्म है। आज के युग में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो यह सोचते हैं कि वे धर्म का पालन करते हैं। फिर भी संसार में दुःखों की अधिकता दिखाई देती है। धर्म के नाम पर अधिकतर मत मतान्तर तो इसी आधार पर चल रहे हैं कि वे लोगों के जीवन से तनाव, दुःख दूर करते हैं। धर्म का पालन करने से सुख होता ही होता है। शास्त्र की बात असत्य नहीं हो सकती, पर फिर भी दुःख दूर नहीं हो रहे हैं तो कहीं न कहीं कमी अवश्य है। या तो जिसे मनुष्य धर्म समझकर पालन कर रहा है, वह धर्म नहीं है या फिर धर्म का पालन करने में कोई न्यूनता रह गई है।

धर्म के बारे में सीधा सीधा कह दिया कि जिससे इस लोक में और परलोक में सब सिद्धियाँ/ सफलताएँ प्राप्त हों वह धर्म है। परलोक तो परोक्ष है। इस जीवन में भी धर्म का पालन करने से कोई सुधार नहीं आया तो समझ लेना चाहिए कि धर्म का पालन नहीं हो रहा है। जिसे धर्म समझा जा रहा है वह कुछ और ही है। कुछ लोगों के लिए धर्म केवल दूसरों से लड़ने का माध्यम भर रह गया है, जिसका राजनीति के लोग लाभ उठाते हैं। दूसरों की सहायता आदि-- जिन्हें सामान्य रूप से धर्म कह दिया जाता है, वे धर्म से सम्बन्धित कार्य हैं। देना कार्य है, दान की भावना को आत्मसात् कर लेना धर्म है। धर्म का पालन करने के बाद तो उसका फल सुख के रूप में मिलता ही है, पालन करते करते ही हमें यह अनुभव हो जाता है कि हम ठीक कर रहे हैं, और यह 'स्वाहा' का सुख- कि सब ठीक हो गया, कोई छोटा सुख नहीं है। हम कोई व्यवापार करते हैं तो उसमें कभी लाभ भी हो जाता है कभी हानि भी। जब लाभ मिलता है तो हमें सुख मिलता है, हानि होती है तो हम दुःखी होते हैं। पर यह धर्म का आचरण ऐसा है कि इसमें हानि तो कभी होती ही नहीं है। एक सामान्य व्यापारी, संभव है ज्यादा कमाकर सुख प्राप्त करता हो, चाहे उसके तरीके अनुचित ही क्यों न हों। पर एक धार्मिक व्यापारी सही तरीके से कमाकर सुख प्राप्त करता है चाहे उसे कुछ रूपयों का कभी घाटा ही क्यों न हो जाए। हालांकि आर्थिक हानि भी उसे होती नहीं है फिर भी उसका सुख तो उसे उचित तरीके अपनाने से ही मिल जाता है। यही स्थिति धर्म की है। जब धर्म का सही अर्थों में पालन किया जाता है, जब धर्म व्यक्ति की जीवन शैली बन जाता है तो बाकी सुख तो बाद में मिलते हैं, उसका सुख तो उसे व्यवहार काल में ही मिल जाता है।

ऋग्वेद में उपदेश किया गया है- **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व।** कि जुआ मत खेल, कृषि कर। मनुष्य को जुए से हटाकर कृषि में लगाने का उपदेश। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब लोग हल-बैल लेकर खेत की ओर चल पड़ें। वास्तव में ये दोनों बातें जीवन शैली की बातें हैं। जुआ खेलना एक जीवन शैली है, एक शैली कृषि करना है। जुए का अर्थ है- बिना समुचित पुरुषार्थ किये कुछ प्राप्त करना, प्राप्त करने की इच्छा करना। कृषि का अर्थ है- पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त जो मिले उसे प्रभु का प्रसाद समझकर संतोष के साथ ग्रहण करना। बिना कमाए कोई धन सम्पत्ति के महत्त्व को नहीं समझ सकता। धन का महत्त्व वही समझ सकता है जिसने उसके लिए पसीना बहाया हो, और धन कल्याणकारी भी केवल उसी के लिए हो सकता है।

बिना परिश्रम के प्राप्त किया गया धन किसी को कभी सुख नहीं दे सकता। जो लोग जुए की जीवन शैली से कमाते हैं उनके धन का भोग कोई और ही करता है, यह चाहे उनकी सन्तान ही क्यों न हो। आज संसार में जो फिजूलखर्ची बढ़ रही है, उसका कारण यह जुए की प्रवृत्ति ही है। बिना किये खाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। करते करते दूसरों को दुःख देने की वृत्ति बढ़ रही है, इसलिए न तो कमाते-२ कभी तनावमुक्त होते, न ही कमाने के बाद कभी संतुष्ट होते। कमाने का साधन ऐसा होना चाहिए कि कमाते-२ ही सुख मिले। कृषि करते करते ही- फसल आने से पहले ही, कृषि कार्य से न जाने कितने प्राणियों का उपकार हो जाता है। कितने कीट पतंगे-- कितने पक्षी, मूषक आदि। यह अहैतुक उपकार रूपी धर्म का कार्य उस जीवन शैली से अनायास ही हो जाता है। कृषि के कार्य में जाने या अनजाने दूसरों का उपकार करने का सुख मिलता है। यही कृषि की जीवन शैली अपनाने को कहा गया है।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर उसे जीवन शैली के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि सभी व्यक्ति विद्वान् नहीं हो सकते, लेकिन धार्मिक सभी हो सकते हैं। सुखी, शांत, तनाव रहित जीवन जीने का मनुष्य मात्र का अधिकार है और यह सब धर्म का पालन करके प्राप्त किया जा सकता है

आओ अब वापस लौट आयें!!

❒सहदेव समर्पित

आओ, अब वापस लौट आयें।
भौतिकता की चकाचौंध तज,
फिर सादा जीवन अपनायें।।
आओ अब वापस लौट आयें।।

औरों का कर अंधानुकरण,
बदली जीवन की परिभाषा।।
लक्ष्यहीन हौवा विकास का,
आशा जब बन गयी निराशा।।
यन्त्र–क्रांति की मृगतृष्णा तज
मंत्र युक्त मानव बन जाएं।।
आओ अब वापस लौट आएँ।।

जल वायु पृथिवी सब दूषित,
विषमय वातावरण बनाकर।।
शांति कहां पाएगा मानव,
उच्छृंखल आचरण बनाकर ।।
सब कुछ खा जाने को आतुर,
लालच से यह सृष्टि बचाएं।।
आओ, अब वापस लौट आयें।।

जल जंगल वन पर्वत काटे
घर छीने निज सुघर बनाएँ।
फिर वे बेघर मार–मार कर
मुर्दाघर निज उदर बनाए।।
ताजा स्वच्छ स्वस्थ भोजन है,
अन्न, शाक, फल भोजन खाएं।।
आओ अब वापस लौट आए।।

कितने जीव मारकर खाये,
मानव ने कितनी गड़बड़ की।
भूल गया सब 'फेक' हेकड़ी
पाकर पीड़ा चमगादड़ की।।
जो बोयेंगे वह पाएंगे
नियम यही है भूल न जाएँ।।
आओ अब वापस लौट आयें।।

देवदत्त 'देव' की गजल

भले ही रहनुमाओं के लिए है दूर का किस्सा।
हमेशा ही कहेगी लेखनी मजबूर का किस्सा।।

हकीकत तो बयां करना हुआ हरगिज जरूरी है,
जमाने को सुनाऊं किसलिए मैं तूर का किस्सा।।

गया अब तक नहीं इक भी निवाला पेट में उनके
झलकता दर्द आंखों से कहूं क्यूं हूर का किस्सा।।

सियासत में रहा जमघट हमेशा ही लुटेरों का,
जमाना जानता इनके बने दस्तूर का किस्सा।।

यहां पे भूख बदहाली मिली सौगात में इसको,
नहीं इसके सिवा मैंने सुना मजदूर का किस्सा।।

कहीं मजदूर सड़कों पर कहीं मजबूर सड़कों पर,
बयां मैं कर रहा रो रो के चकनाचूर का किस्सा।।

बढ़ी इस दौर में मजदूर की तो बेबसी बेशक
यहां अखबार कहता है फकत मशहूर का किस्सा।।

यहां पर तो डकैती लूट हत्या काम है इसका,
जमाना जानता है रहनुमा के नूर का किस्सा।।

नहीं सुनता किसी की कर रहा हर बात मनमानी
छिपा तो 'देव' से हरगिज नहीं मगरूर का किस्सा।।

–देवदत्त देव, नारनौंद हिसार १२५०३९

जिजीविषा का छंद

रचनाकार : पुष्पलता आर्या

राजनीति की दुकान चल रही आठों याम
चाहे आम आदमी का रोजगार बन्द है।।

चेहरों पे हैं नकाब भला कहें या खराब
कौन मतिमान और कौन मतिमन्द है।।

धृष्टताओं की जमात दिन देखती न रात
थूकती है कायदे पे, हौसला बुलंद हैं।।

सड़कों पे शर्मसार, डोलता सृजनकार
भूख की है लेखनी, जिजीविषा का छंद है।

jk"V d fy; ?kkrd g tkfrokn

❐रिपुदमन सिंह, मंत्री, जिला आर्य प्रतिनिधि सभा, बागपत, उत्तर प्रदेश। (9868214782)

जातिवाद इस देश के पतन के प्रमुख व मूल कारणों में से एक है। राजनैतिक पार्टियों द्वारा अपने स्वार्थ के कारण जातिगत संगठनों का निर्माण और संवर्धन कराया जाता रहा है, जो आज प्रतिस्पर्धा के कारण विकराल रूप धारण कर चुका है। ब्राह्मण समाज, त्यागी समाज, जाट समाज, गुर्जर समाज, राजपूत, कश्यप, वाल्मीकि आदि आज अस्तित्व में आई लगभग सभी जातियों के अपने–अपने संगठन हैं। यदि संख्या की दृष्टि से देखा जाये तो इन समाजों और जाति संगठनों की संख्या जातियों के अनुरूप ही कई हजार होनी चाहिये। यदि पूछा जाये कि इनका जाति के रूप में संगठन बनाने का उद्देश्य क्या है तो सभी कहेंगे कि हमें अपने वर्ग के हितों की चिंता व संरक्षण करना है।

यदि मूल रूप से विचार किया जाये तो आजकल इसके पीछे राष्ट्र को छिन्न–भिन्न करने के षड़यंत्र कार्य कर रहें हैं। इनमें शत्रु राष्ट्र तो हैं ही, साथ में हिन्दू धर्म से इतर विदेशी मूल के अन्य मत पंथ भी शामिल हैं। लेकिन हम लोग निजी स्वार्थों की पूर्ति में इतने मग्न हैं कि सिर पर आसन्न खतरे को नहीं देख पा रहे हैं। आरक्षण की व्यवस्था, दूसरी जाति से वरीयता पाने का स्वार्थ, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा–चाहे राजनैतिक हो या संगठन पर कब्जा कर धन की लूट करना हो, कमोबेश सभी जातिगत संगठनों के पीछे यही प्रमुख कारण है। ऐसे तो विरले ही लोग होंगे जो किसी जाति के सामाजिक उत्थान के लिए निजी स्वार्थों को छोड़कर कार्य करते होंगे। यदि ऐसा कर भी रहे हैं तो भी इसे संकुचित हृदयता ही कहा जायेगा। पूरे शरीर की चिंता छोड़कर हम केवल शरीर के एक अंग की चिंता करें तो उसे और क्या कहें! इन सबका राष्ट्रीय हितों के साथ टकराव निश्चित ही है। सभी वर्ग के लोग यदि ऐसा ही करते रहे तो राष्ट्र की चिंता कौन करेगा! यदि केवल अपने वर्ग के पोषण की ही चिंता रही तो क्या इससे राष्ट्र की रक्षा हो सकेगी? क्या ये विग्रह का कारण नहीं बनेगा? उद्देश्य के संकुचित होने से आत्मिक बल कमजोर रहेगा तो इससे संगठन को बल कैसे मिलेगा? अंत में ऐसे संगठनों का राजनैतिक दुरुपयोग के अतिरिक्त और क्या लाभ रहेगा!

ऐसे संगठनों के निर्माण का उद्देश्य क्या केवल जाति उत्थान ही है? व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं? क्या जाति या वर्ग की रक्षा या हितचिंता से अधिक आवश्यक राष्ट्र या मानवता ही हितचिंता नहीं? क्या जाति संगठनों की प्रतिस्पर्धा के कारण राष्ट्र को क्षति नहीं पहुंचेगी? राष्ट्र के असुरक्षित होने से क्या हम सुरक्षित रह पाएंगे? वस्तुतः वर्ग विशेष की चिंता से अधिक आज राष्ट्र की चिंता आवश्यक है। यदि कोई कहे कि जब सरकार द्वारा किसी एक वर्ग का तुष्टिकरण किया जाता है तो हम क्यों न अपने वर्ग की चिंता करें! इसके लिए मैं कहता हूँ कि यदि किसी घर को लूटा जा रहा हो तो हमारा क्या कर्तव्य है कि उसे रोकें या स्वयं लूट में शामिल हो जाएँ? और यदि बाद में पता लगे कि यह तो हमारा ही घर था, तब क्या होगा?

यदि हम इतिहास पर विचार करें तो पता लगेगा कि जातियों का इतिहास कोई अधिक पुराना नहीं है। लगभग १५०० वर्ष पूर्व तक आधुनिक जातियों का कोई चिह्न भी नहीं था। यदि और अधिक पूर्व में जाएँ तो आदिकाल से लेकर महाभारत युद्ध के भी बहुत बाद तक केवल चार वर्णों का ही वर्णन मिलता है। १४०० वर्ष पूर्व महाराजा हर्षवर्धन के काल तक भी केवल ७ वर्गों का ही वर्णन है, जिनमें ब्राह्मण के अतिरिक्त व्यापारी, रथकार, शिल्पकार, शूद्र आदि नाम भेद से उन्हीं चार वर्णों से उत्पन्न वर्ग हैं। इससे पता लगता है कि कालान्तर में पाई जाने वाली जातियां उन चार वर्णों का ही विकृत रूप हैं।

ऋषियों के द्वारा वेद के आधार पर कार्यों के विभाजन के लिए वर्णों की व्यवस्था की गई थी। उनका उद्देश्य मनुष्यों में भेद उत्पन्न करना नहीं था। केवल समाज में व्यवस्था बनाना ही उनका उद्देश्य था। किसी भी वर्ण में छोटा–बड़ा या उच्च और हीन जैसी कोई बात नहीं थी। ये केवल योग्यता पर आधारित थे। जन्म से इनका सम्बन्ध नहीं था। योग्यता के अनुसार इनमें व्यक्ति के अपने ही जीवन काल में परिवर्तन भी संभव था। यह ऐसा ही है जैसे आधुनिक काल में शासन द्वारा पुलिस, अध्यापक, सफाई कर्मचारी, चिकित्सक, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि वर्ग बनाकर सामाजिक व्यवस्था की गई है और सभी अपने कार्य को बदलने अथवा एक नौकरी को छोड़कर दूसरी पकड़ने में स्वतंत्र हैं। इनकी संतान भी पिता के व्यवसाय से अलग व्यवसाय के लिए स्वतंत्र है। इसी प्रकार वर्णों की भी व्यवस्था थी। इसके अनेक उदाहरण इतिहास में प्राप्त होते हैं।

यदि इतिहास को जानकर विचार करें तो पता लगता

है कि परमात्मा द्वारा भी कोई भेदभाव नहीं किया गया है। सभी मनुष्यों को हाथ, पैर, मुँह, आँख, नाक, पांच ज्ञानेंद्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ आदि समान रूप से प्रदान की गई हैं। यदि कहीं भेद भी दिखाई देता है तो वह कर्मफल के कारण से है, जातिभेद के कारण से नही, क्योंकि परमात्मा की व्यवस्था में जातिगत भेदभाव नहीं है। अतः जातिगत भेदभाव कृत्रिम और मनुष्य जनित है। यह राष्ट्र के लिए रोग है जो इसकी जड़ों को खोखला करता जा रहा है।

हमें व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठ कर राष्ट्र और मानव उत्थान की चिंता करनी चाहिए अन्यथा अब हमारे पास अधिक समय नहीं बचा है। विधर्मियों, शत्रु राष्ट्रों द्वारा राष्ट्र को तोड़ने के लिए हिदू=आर्य जाति को वर्गों में बांटने के षड्यंत्र रचे जाते रहे हैं और अब यह कार्य अधिक तीव्र गति से किया जा रहा है। हमें इतिहास से प्रेरणा लेते हुए इन षड्यंत्रों को समझ कर इनके प्रतिकार के उपाय बहुत तीव्रता से करने होंगे अन्यथा अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बर्मा, बांग्लादेश तो हाथ से निकल ही गया है– पूर्वोत्तर, केरल, पश्चिम बंगाल की स्थिति भी चिंतनीय है। चीन और पकिस्तान के साथ देश युद्ध के मुहाने पर खड़ा है। देश के अंदर भी अनेक पाकिस्तान बने हुए हैं। युद्ध की स्थिति में अंदर के हालात कैसे हो सकते हैं, दिल्ली दंगों से अनुभव लेकर आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

समय समय पर विभिन्न समुदायों का गठन देश की रक्षा के लिए होता रहा है। बाद में धीरे धीरे वे जाति या धर्म के रूप में परिवर्तित होते चले गए। हमें यह भी विचार करना चाहिए कि इसका गठन क्यों हुआ था? क्या इनका गठन राष्ट्र–रक्षा के लिए नहीं किया गया था? क्या इन संगठनों में सभी वर्गों के वीर सैनिक नहीं थे? क्या आज इनके जाति या धर्म के रूप में परिवर्तित हो जाने से इनके और हमारे पूर्वज बदल जायेंगे? आज विभिन्न जातियां अपने अपने गुणों का बखान करती हैं और किन्ही गुणों के कारण स्वयं पर गर्व करती हैं, क्या वे गुण अन्य मनुष्यों और वर्गों में नहीं पाए जाते? क्या वे गुण कथित वर्ग के सभी मनुष्यों में विद्यमान हैं? वस्तुतः विशेषता जातिगत या जन्म के कारण नहीं किन्तु गुणों के कारण होती है और ये किसी की बपौती नहीं है। जिनको उचित वातावरण मिलता है, उचित शिक्षा प्राप्त हो जाती है वही मनुष्य गुणी होकर महानता को प्राप्त हो सकता है। इसमें जाति विशेष का कोई महत्व नहीं है। क्योंकि जातियाँ कृत्रिम और मनुष्यकृत हैं। कोई भी मनुष्य उत्तम शिक्षा और उत्तम संस्कारों के प्राप्त होने से उत्तमता को प्राप्त हो सकता है।

मेरी इन बातों पर विचार करें और अपनी शक्ति को राष्ट्र व मानवता की रक्षा में व्यय करें। राष्ट्र की रक्षा से ही हमारी सुरक्षा संभव है। ऋषि दयानन्द के शब्दों में यदि कहूँ तो एक भाषा, एक धर्म और एक लक्ष्य के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है।

स्वामी धर्म मुनि जी महाराज का देहावसान

आर्य जगत् के महान संन्यासी और आत्म शुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ के अधिष्ठाता स्वामी धर्म मुनि जी महाराज का २१ जून को निधन हो गया। वे लंबे समय से बीमार चल रहे थे। वे पीजीआई रोहतक में भर्ती थे, जहां उन्होंने रविवार को नश्वर देह का त्याग कर दिया। वे शुरू से ही आर्यसमाज के साथ जुडे हुए थे। उन्होंने आर्य समाज की शिक्षाओं को लोगों तक पहुंचाने के लिए महत् कार्य किया। स्वामी जी बड़े ही कर्मठ ईश्वर भक्त, देशभक्त और राष्ट्र के लिए निरन्तर समर्पित, विरक्त साधु थे। स्वामीजी का जीवन उत्साही, तपस्वी, अत्यंत पुरुषार्थमय था। शांति धर्मी परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धाञ्जली।

ofnd vk; Z lLdfr dk ey lkjLor in'k&2

❒**महिपाल आर्य,** संस्कृत प्राध्यापक पर्व प्रधान हसला **(सम्पर्क : 94161677041)**

नदी सूक्त (ऋग्वेद १०/७५/१) में सिंधु शब्द का उल्लेख होने से पाश्चात्यों का मत है कि आर्य भारत में किसी ऐसे स्थान से आए थे जहां से मार्ग में सबसे पहले सिंधु नदी पड़ती थी। इसी आधार पर वे आर्यों के भारत में मध्य एशिया से आने की मान्यता का प्रतिपादन करते हैं। दूसरी ओर वे ऋग्वेद के दसवें मंडल को शेष ऋग्वेद के बाद रचित हुआ मानते हैं। सुजनतोष न्याय से यदि इसे ठीक मान भी लिया जाए तो प्रश्न उठता है कि आर्यों ने अपने भारत में आने का उल्लेख प्रारंभ में (प्रथम मण्डल में) न करके अंत में (दशम मंडल में) क्यों किया? जब उन्होंने भारत में आने के बाद वेदों की रचना की तो निश्चय ही उन्हें ग्रंथ का प्रारंभ ही इस बात से करना चाहिए था कि वे कब? कहां से? क्यों और कैसे भारत में आए। स्पष्ट है– इस सूक्त का आर्यों के भारत में आगमन से कोई संबंध नहीं है। वास्तव में इस सूक्त में सिंधु आदि नदियों का उल्लेख है ही नहीं। यदि ऐसा होता तो क्रमपूर्वक सिंधु के बाद जेहलम का, फिर चिनाब का, फिर रावी, व्यास, फिर सतलुज, फिर सरस्वती, फिर यमुना–– और अंत में गंगा का उल्लेख होना चाहिए था। परंतु है इसमें बिल्कुल उलट।

इस सूक्त के पांचवें मंत्र– इयं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि–– इत्यादि (ऋग्वेद १०/७५/५) मंत्र में स्पष्ट ही १० नदियों के नामों का उल्लेख है। इन १० नदियों में से कौन सी तीन नदियों को छोड़ दिया जाए? इस मंत्र का अनुवाद करते समय ग्रिफिथ जैसे विद्वानों ने सरस्वती के स्थान पर शुतुद्री करके सरस्वती को पीछे डाल दिया! पता नहीं क्यों? दूसरी बात यह है कि सिंधु पार करते ही आर्यजन एक लंबी छलांग लगाकर गंगा के तट पर कैसे पहुंच गए और वहां से फिर उल्टे पांव यमुना, सरस्वती, सतलुज, व्यास–– इस प्रकार क्यों चल दिए! फिर सिंधु नदी का उल्लेख ८वें मंत्र में स्वश्वा सिंधुः सुरथा –– मधुवृधम्।। का वर्णन देखिए– उत्तम इंद्रियों वाली, उत्तम रथ वा शरीर वाली, उत्तम वस्त्रों या भावों वाली, स्वर्ण के समान कांतियुक्त, उत्तम कार्य वाली, बलवती, उत्तम त्वचा वाली, सबको बांधने वाली, नाना नाड़ियों के जाल से युक्त, सौभाग्यवती, आध्यात्मिक आनंद से युक्त–– इन विशेषणों का किसी नदी के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता। लक्षण से ये शरीरयुक्त आत्मा अथवा स्त्रीविशेष के प्रसंग में प्रयुक्त हो सकते हैं। फिर यदि यह भारत के भूगोल का ही वर्णन माना जाए तो चौथे मंत्र––'अभि त्वा सिन्धो–– धेनवः।' का अर्थ संगत होगा? जिन नदियों का यहां संबोधन किया है वे सिंधु की ओर ऐसे दौड़ रही हैं जैसे दूध भरी गाय रंभाती हुई अपने बछड़ों की ओर दौड़ती है। अतः वेद में नदियों के प्रति मुख्यार्थ संगत न होने से अध्यात्म में नदी नामों से शरीरगत नाड़ियों का ग्रहण होता है। गंगा अर्थात् नाड़ी में प्राणों को वश में करने से योगी उत्तम गति को पाता है। यमुना अर्थात् यह प्राणायाम के द्वारा प्राण को अपने में सम्मिश्रित करती हुई गति करती है। सरस्वती अर्थात् सरस् पद जलवाची है, अतः गति करता है, बहता है। स+असुन् अर्थात प्रशस्त रसवाली होने से सुषुम्णा नाड़ी को सरस्वती कहा गया है। शुतुद्री अर्थात् शीघ्र ले जाने वाली होने से यह शुतुद्री है। परुष्णी जिसको इरावती भी कहते हैं अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति की साधिका। अशिक्नी पिंगला को असिता या कृष्णा कहा जाता है। मरुद्वृधा यह नाम सामान्यतः सब नाड़ियों का वाचक है अर्थात् विस्तृत व क्षय रहित है। सिंधु अर्थात् इसकी ओर कई नदियां बहती हैं, अतः यह सिंधु कहलाती है।

पौराणिक विद्वानों द्वारा गंगा आदि शब्दों का अन्यथा भाव से माहात्म्य तथा पाश्चात्यों द्वारा वेद मंत्रों के आधार पर आर्यों के आव्रजन की कल्पना किए जाने का कारण अनभिज्ञता है तथा गूढ़ार्थ को न समझा जाना है। यदि गंगा आदि शब्दों को नदियों का वाचक मान भी लिया जाए तो भी इनसे वेदों में इतिहास सिद्ध नहीं होता। नदियों का वर्णन एक नैसर्गिक स्थिति है। नदियाँ सर्वत्र समान रूप से बहती हैं। उनकी स्वभाव प्राप्त रचना या गति आदि का उल्लेख किसी इतिहास आदि का द्योतक नहीं है। जैसे आकाशीय सूर्य, चंद्र, ध्रुव आदि पदार्थों के नाम से खगोल विद्या जानी जाती है, वैसे ही गंगा आदि नामों से भौगोलिक पदार्थों का ग्रहण होता है। वेद में नदी पर्याय जो पद प्रयुक्त हुए हैं उनका संग्रह 'निघंटु' में किया गया है, जिनकी संख्या ३७ है। वेद में वे शब्द सामान्य जलधारा मात्र के लिए प्रयुक्त हैं।

जो वेदों को नित्य अथवा सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत मानते हैं, उनकी मान्यता है कि लोक में व्यवहार के लिए सर्वप्रथम नाम पद वेद से लिए गए हैं। (मनु० १/२१) उस अवस्था में यह संभव माना जा सकता है कि जिन ऋषियों के पास वेद थे, उन्होंने पदार्थों, व्यक्तियों आदि के नाम वेद के अनुसार रख लिए। ये नाम लोक से वेद में आए या वेद से लोक में? प्रथम बात मानने में यह बाधा है कि हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं, जिससे यह निश्चित किया जा सके कि वेद से पहले इन नदियों के ये नाम व्यवहार में आते थे और तब वहां से इन्हें वेद में लिया गया। आर्यों से

पहले जब इन नदी प्रदेशों में मानव का निवास ही नहीं था, तब वेद में उपलब्ध इन नदी नामों के व्यवहार का प्रश्न ही नहीं उठता। जो विद्वान ऐसा नहीं मानते और आर्यों का यहां बाहर कहीं से आकर बसना मानते हैं वे भी यह सिद्ध करने में असमर्थ हैं कि उनके आने से पहले इस प्रदेश की नदियों के यही नाम थे। वेदों से पहले इस प्रदेश में प्रवहमान नदियों के इन नामों का लोक व्यवहार में अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; इसलिए यही मानना तर्कसंगत है कि लोक से वेद में नहीं, अपितु वेद से लोक में ये नाम आए हैं। हो सकता है कालांतर में अन्य देशस्थ लोगों अथवा वेदज्ञ आर्यों ने भी अपने देश में उक्त गंगा आदि नाम रखे हों, किंतु कालांतर में वे नाम लुप्त हो गए हों और उनकी जगह नए नाम बोले जाने लगे हों। भारत में भी शुतुद्री, विपाट्, वितस्ता आदि नामों के स्थान पर सतलुज, व्यास, जेहलम आदि नाम प्रचलित हो गए हैं। पुराने नाम साहित्य में पड़े रह गये हैं। विदेशों में भी यत्र तत्र उनके अपभ्रंश उपलब्ध हो सकते हैं। जलधारा रूप नदियां किसी भूखंड पर बहती ही हैं। इंद्र (सूर्य या विद्युत्) वृत्र (मेघ, बादल) को मारकर नदियों को बहाता है। इंद्र सूर्य या सूर्यरश्मि हो, वायु या विद्युत् हो; वृत्र निश्चित रूप से मेघ है। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार इनका पारस्परिक सहयोग या संघर्ष ही वर्षा का हेतु है। वही भूमंडल पर नदी रूप में प्रवाहित होता है। तब भूमंडल पर वह कौन सा प्रदेश हो सकता है, इसी बात का निश्चय करने के लिए विद्वानों ने सप्तसिन्धवः की कल्पना की होगी। यह भी संभव है कि उस समय अथवा उसके अनन्तर भी प्रदेश का यह नाम न रहा हो, पर ऐसा प्रदेश अवश्य रहा है जहां ये सात नदियां बहती हैं। मैक्समूलर के मत में ये नदियां सतलुज, सरस्वती, व्यास, रावी, चनाब जेहलम और सिंधु थी परंतु कुछ अन्य विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया है कि इन सात नदियों में कुभा (काबुल) और रसा को भी जोड़ा जाना चाहिए। इन विद्वानों के अनुसार सप्तसिंधु से अफगानिस्तान और पंजाब का क्षेत्र अभिप्रेत था।

बिना बीज के जड़ और निर्जीव रेत से वृक्षों के अंकुर नहीं फूटते। बीज भी आप ही आप नहीं निकलता, किंतु खोज करके लाया जाता है और अनुकूल स्थान में बोया जाता है। इसी बीज क्षेत्र न्याय के अनुसार मनुष्य भी पहले किसी एक ही स्थान पर पैदा हुआ और फिर संसार भर में फैल गया। प्रारंभ में मनुष्य भी किसी ऐसे स्थान पर पैदा हुआ होगा जहां का जलवायु उसके अनुकूल हो, खाद्य-सामग्री सुलभ हो और जहां वह अधिक से अधिक सुरक्षित रह सके। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी वनस्पति आदि के लिए भी ऐसा ही स्थान उपयुक्त होगा। इस प्रकार आदि सृष्टि के लिए स्थान वह उपयुक्त होगा- (१) जो संसार में सबसे ऊंचा हो। (२) जहां सर्दी और गर्मी जुड़ती हों। (३) जहां मनुष्य के खाद्य, फल, वनस्पति प्रचुरता से उपलब्ध हों। (४) जिसके आसपास सब रूप-रंगों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण हो और जिसका नाम सबके स्मरण का विषय हो।

ये सभी लक्षण हिमालय पर घटते हैं। चरक संहिता के प्रमाण से सिद्ध है कि आर्य लोग हिमालय से ही भारत में आए थे और बीमार होकर एक बार फिर अपने मूल निवास हिमालय को लौट गए थे। इतना ही नहीं, कुछ समय बाद उनके फिर लौटकर भारत में बसने का उल्लेख मिलता है। (चरकसंहिता चिकित्सा स्थान ४/३) हिमालय से उतरकर आर्य लोग सीधे पर्वत श्रेणियों के पश्चिमी और दक्षिणी मैदान प्रदेश में आ गए। तब उन प्रदेशों के आर्यावर्त एवं भारतवर्ष नाम प्रचलित हुए। प्राचीन काल में ही कभी आर्यावर्त के अवान्तर प्रदेश ब्रह्मवर्त, ब्रह्मर्षि देश आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। (मनुस्मृति २/१७-२२) (व्याकरण महाभाष्य २/४/१० व ६/३/१०९) जिस रास्ते से ये आर्यजन यहां आए, उस रास्ते का नाम इन्होंने हरद्वार रखा। अपने इस निवास स्थान का नाम उन्होंने आर्यावर्त या ब्रह्मावर्त रखा। आर्यावर्त की सीमाओं का वर्णन मनुस्मृति २/२ में निर्दिष्ट है। स्वामी दयानंद जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में मनुस्मृति के श्लोक के हवाले से लिखा है कि हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विंध्याचल के भीतर जितने प्रदेश हैं वे सब आर्यावर्त कहाते हैं। मनुस्मृति २/१७ महाभारत वन० ८०/६३, शल्य० ३६/३३ के अनुसार सरस्वती जैसी नदियां, जो आज अपना अस्तित्व खो बैठी हैं, इसी ब्रह्मर्षि देश, कुरु देश में प्रवाहित थीं तथा रसातल में जिन का अन्वेषण जारी है, जिसका प्रवाह मार्ग राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी भाग की ओर दृष्टिगोचर होता है।

अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि यद्यपि वेदों का अनित्य इतिहास तथा भूगोल से कोई संबंध नहीं है, परंतु उनमें कुछ ऐसे शब्द अवश्य हैं जो भारत के पर्वतों, नदियों तथा प्रदेशों के पुराने नाम थे। वैदिक संहिताओं में कुल मिलाकर ३१ जलधाराओं का उल्लेख है, जिनमें से २५ अकेले ऋग्वेद में उल्लिखित हैं। भौगोलिक प्रमाण भी सारस्वत प्रदेश, सिंधु प्रदेश में अधिक घटते हैं। वैदिक काल से ही यह सारस्वत प्रदेश अपनी अद्भुत प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण होने के कारण पृथ्वी का स्वर्ग कहलाता था। सरस्वती नदी तथा इसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित यह क्षेत्र कृषि के लिए एक वरदान था। कदाचित् इस प्रदेश की सुख समृद्धि के कारण ही महाभारतकार ने (ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे) कुरुक्षेत्र को त्रिविष्टप् कहकर पुकारा है। सारस्वत प्रदेश की सुख-समृद्धि का आधार सरस्वती नदी ही थी, जिसकी प्रशंसा करते वैदिक ऋषि अघाते नहीं, क्योंकि उसका मूल अधिवास, संस्कृति का प्रधान केन्द्र यही सरस्वती आदि नदियां थीं। आर्यों की मूलस्थली प्राचीन आर्यावर्त की भूमि पंचनद प्रदेश, सारस्वत प्रदेश, सप्तसिंधु प्रदेश ही है।❒❒

शठे शाठ्यम् समाचरेत्!

सबके साथ प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार

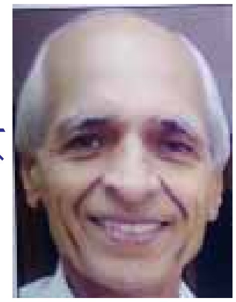

❒प्रोफेसर शामलाल कौशल 9416359045,
975 बी ग्रीन रोड, रोहतक १२४ ००१

dN fo'k"k ekeyk e rk cj d cny e vPNk djuk ;k {kek dj nuk dh uhfr viukb tk ldrh g] yfdu bl lkekU; fl)kr d rkj ij Lohdkj ugh fd;k tk ldrkA

अंग्रेजी में एक कहावत है Forgiveness is the best kind of revenge. अर्थात् किसी को उसके दोष के बदले में सजा देने के बदले में माफ कर देना सबसे बड़ा प्रतिशोध होता है। इसका अर्थ यह है कि जब कोई दोषी व्यक्ति अपनी गलती महसूस करता है तो उसे जो दु:ख होता है वह बदला लेने से भी ज्यादा बड़ी सजा के बराबर होता है। इससे उसको बहुत बड़ी चोट लगती है। आमतौर पर हम किसी को सुख के बदले में सुख और दु:ख के बदले में दु:ख देते हैं। वैसे भी कहा गया है कि जैसा तुम बोओगे, वैसा ही फल पाओगे अर्थात् As you sow, so shall you reap. लेकिन संत समाज का यह मानना है कि जो तुम्हारे लिए कांटे बोता है, आप उसके लिए फूल बांटो। आपके लिए तो फूल फूल ही रहेगा, लेकिन उसके लिए वही फूल कांटा बन जाएगा।

संत समाज बुराई के बदले में अच्छाई, झूठ के बदले में सच, पाप के बदले में पुण्य, क्रोध के बदले में संयम, नफरत के बदले में प्यार किए जाने का उपदेश देता है। लेकिन कुछ नीतिमान् आचार्यों का यह मत भी है कि जो आपके साथ अच्छा ही करता है, इसके साथ तो अच्छाई जरूर करो और बुरे आदमी को ऐसा ईंट का जवाब पत्थर से दो कि वह सदा याद रखे कि उसका पाला भी कैसे आदमी से पड़ा था। इसी बात को याद करते हुए वह दूसरे लोगों के साथ बुराई नहीं करेगा।

कुछ विशेष मामलों में तो बुरे के बदले में अच्छा करना या क्षमा कर देना की नीति अपनाई जा सकती है, लेकिन इसे सामान्य सिद्धांत के तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। अगर कोई पेशेवर अपराधी बलात्कार, हत्या करता है या समाज में दंगे फसाद करके देशद्रोह करने के लिए दूसरों को उकसाता है तो ऐसे लोगों को कैसे माफ किया जा सकता है? अपराध को रोकने के लिए लोगों के मन में सजा का भय पैदा करना बहुत जरूरी है।

सामान्य तौर पर बात की जाए तो 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' दुष्ट के साथ यथायोग्य व्यवहार करना ही चाहिये। बार-बार वही अपराध करने वाले हमारी कृपा, दया, माफी या सहानुभूति के पात्र नहीं हो सकते! ऐसे लोगों के लिए कानून व्यवस्था, पुलिस, न्यायालय तथा जेलें बनी हुई है। क्या कोई शासन दंड विधान के बिना चल सकता है! आजकल जेलों को सुधार गृह कहा जाने लगा है। इसका मतलब यह है कि जिस अपराधी को अपराध के बदले में सजा मिलती है, उसे जेल या सुधार गृह में भेज कर सुधरने का मौका दिया जाता है। लेकिन यह बात सर्वविदित है कि जेलों में पहले से ही गंभीर अपराध करने वाले खूंखार अपराधी होते हैं। जब नए-नए कैदी इन खूंखार अपराधियों से मिलते हैं तो सुधरने के बदले में और भी ज्यादा बड़े अपराध सीखने की कला उनसे सीख जाते हैं और जब सजा भुगत कर जेल से बाहर आते हैं तो बड़े से बड़े अपराध करना शुरू कर देते हैं।

यहां यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए जो पेशेवर अपराधी जेलों में सजा भुगत रहे होते हैं उन्हें अपनी करनी का कोई अफसोस या दु:ख नहीं होता। अब आप खुद ही सोचिए कि क्या कोई ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ सरकार किसी अपराधी को माफ कर सकती है? कई बार कुछ कैदियों को पैरोल पर कुछ दिन के लिए छोड़ दिया जाता है, उनमें से कुछ लोग तो वापस आते ही नहीं। उन्हें पकड़ने के लिए पुलिस को फिर से कार्रवाई करनी पड़ती है। अब आप सोचिए की हमें 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' की नीति की पालना करनी चाहिए या नहीं करनी चाहिए!

हमारे लाख कोशिश करने के बावजूद भी पाकिस्तान भारत के प्रति शत्रुता, ईर्ष्या तथा द्वेष छोड़ने को तैयार नहीं, कश्मीर के मामले को लेकर भारत ने पाकिस्तान को १९६५, १९७१ और १९९६ में बहुत बुरी तरह से पराजित कर दिया था। इसके बावजूद पाकिस्तान जम्मू कश्मीर में अपने यहां प्रशिक्षित आतंकवादियों को भेजकर तथा जम्मू कश्मीर के लोगों को भारत के खिलाफ भड़का कर माहौल बिगाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ता। बार-बार सरहद पार से गोलाबारी करता रहता है, युद्धविराम का उल्लंघन करता रहता है,

चीन के साथ मिलकर भारत के लिए नित्य नई समस्याएं पैदा करता रहता है।

क्या भारत पाकिस्तान की इस प्रकार की आतंकवादी गतिविधियों को लेकर उसे माफ कर सकता है? बेशक भारत ने जवाबी कार्रवाई करके उसके यहां आतंकवादियों को प्रशिक्षण कैंपों को ध्वस्त किया है, इसके बावजूद पाकिस्तान अपनी भारत विरोधी हरकतों से बाज नहीं आता। क्या भारत पाकिस्तान को माफ कर सकता है? नहीं।

शठे शाठ्यम् समाचरेत् की नीति तो अपनानी ही पड़ेगी। कहा भी जाता है कि अगर आप शांति चाहते हो तो युद्ध के लिए तैयार रहो। आज अमेरिका, रूस, चीन आदि देश जहां विश्व शांति का राग अलापते हुए नहीं थकते, वहीं बड़ी-बड़ी सेनाएं, परमाणु अस्त्र-शस्त्र, खतरनाक मिसाइल, लड़ाकू विमान, पनडुब्बियों आदि के द्वारा एक दूसरे को आंखें दिखाते रहते हैं। कोई भी अपने आप को कम नहीं समझता।

हमारा विचार है कि बार-बार अपराध करने वाले को क्षमा नहीं किया जा सकता, लेकिन जिन मामलों में अपराधी प्रवृत्ति वाले लोगों के सुधरने की संभावना बनी रहती है, उसके बहुत बड़े अपराधी बनने से पहले ही उसे सुधरने का मौका दिया जाना चाहिए। सज्जन ठग को सुधार कर गुरु नानक देव जी ने उसे संत बना दिया, पत्नी प्रेम में पागल तुलसीदास को उसकी पत्नी ने ताने मार कर तथा प्रोत्साहन देकर उसे अमर बना दिया। कहा भी जाता है कि Every Saint has a past and every sinner has a future. लेकिन आजकल जिस तरह हमारे देश में डुप्लीकेट साधु, संत, महंत, बाबे, धर्मगुरु, योगाचार्य की बाढ़ आई हुई है, उनमें से कुछ काम, क्रोध, लोभ ,मोह तथा अहंकार के वश में आकर आम साधारण लोगों के मुकाबले ज्यादा ही अपराध करते हैं। क्या ऐसे लोग हमारी श्रद्धा, मान-सम्मान आदि के हकदार हो सकते हैं? उनमें से कुछ लोग तो कानूनी शिकंजे में फंस कर मुश्किल दौर में से गुजर रहे हैं।

ऐसे लोगों को हमारा समाज या सरकार कैसे क्षमा कर सकती है। जो लोग नौजवानों में मादक पदार्थों की लत को बढ़ावा दे रहे हैं, चाहे उनका कोई भी रुतबा क्यों न हो, उनके मामले में 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' की नीति पर चल कर उनको सजा देनी ही पड़ेगी! बेशक कहा जाता है-क्षमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उत्पात। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अपने से छोटा जितने भी अपराध या गलतियां करता जाए उन सबको नजरअंदाज करके उसे माफ कर देना चाहिए? ऐसे तो वह सिर पर चढ़ जाएगा! घर का माहौल बिगाड़ देगा! सभी को अपमानित करेगा!

लालने बहवो दोषाः।। ताड़ने बहवो गुणाः।।

अगर उसे वक्त पर रोका नहीं गया तो बड़ा होकर बलात्कार, गैंगरेप, चोरी, डकैती, राहजनी, हत्या, हिंसा आदि अपराध करेगा जिसके कारण कानून उसे कभी माफ नहीं करेगा। यहां शठे शाठ्यम समाचरेत् पर अमल करना जरूरी है! हां, पिता, गुरु और बुजुर्गों के लिए अपनों से छोटों को माफ करने के अलावा कोई चारा नहीं।

महात्मा चैतन्यमुनि जी (आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य') का निधन

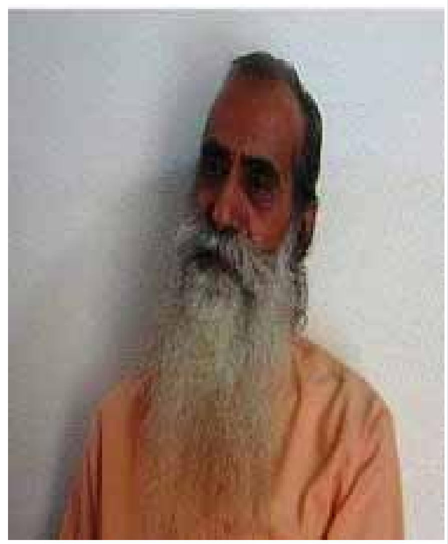

आर्यसमाज के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान उपदेशक और अनेक पुस्तकों के लेखक, उधमपुर, जम्मू कश्मीर और सुंदरनगर, मंडी, हिमाचल प्रदेश के अनेक वैदिक आश्रमों के संचालक व संस्थापक, महात्मा चैतन्यमुनि जी का २६ जून २०२० को दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। वर्तमान में महात्मा जी मंडी के सुंदरपुर आश्रम में ही रहते थे। महात्मा जी एक सफल लेखक, कवि, वैदिक प्रवक्ता व संगठनकर्ता थे। उन्होंने 'आर्य वन्दना' के सम्पादक का दायित्व भी वहन किया था। प्रारम्भिक सामाजिक जीवन में वे भगवानदास व्यथित के नाम से जाने जाते थे। शांतिधर्मी से उनका विशेष स्नेह था। गायत्री मंत्र पर व्याख्या की उनकी लेखमाला शांतिधर्मी के प्रारम्भिक अंकों में प्रकाशित हुई थी। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सत्यप्रिया जी (माता सत्यप्रिया यति) ने साथ ही वानप्रस्थ दीक्षा ली थी। विनम्र श्रद्धाञ्जली।

nljkdk ilUurk nu dh Hkkouk e fufgr g
Lo; dh ilUurk

❑सीताराम गुप्ता ए डी–१०६–सी, पीतमपुरा, दिल्ली–110034 (09555622323)

किसी का पोस्ट किया हुआ एक संदेश पढ़ रहा था। संदेश अंग्रेजी में था – इफ समवन मेक्स यू हैप्पी, मेक देम हैप्पीअर। यदि कोई आपको प्रसन्नता प्रदान करता है तो उसे और अधिक प्रसन्नता प्रदान कीजिए। बहुत अच्छी बात है। आजकल बच्चों के जन्मदिन पर जो बच्चे उपहार लेकर आते हैं उन्हें केक और मिठाइयां खिलाने के अतिरिक्त रिटर्न गिफ्ट्स भी दिए जाते हैं। यदि कोई हमें कुछ देता है तो हमें भी उसे अवश्य ही कुछ न कुछ देना चाहिए। कुछ अधिक दे सकें तो और भी अच्छी बात है। जो हमें प्रसन्नता प्रदान करे उसे प्रसन्नता प्रदान करें। जो हमें मिठाई खिलाए उसे हम भी मिठाई खिलाएं। जितनी उसने खिलाई है उससे भी अधिक खिलाएं। यदि हमें मिठाई खिलाने वाला मधुमेह से पीड़ित है तो क्या फिर भी उसे मिठाई खिलाएं और खूब मिठाई खिलाएं? और यदि कोई हमें कष्ट पहुंचाए तो क्या हम भी उसे और ज्यादा कष्ट पहुंचाएं? जो हमें प्रसन्नता न पहुंचा सकें अथवा हमारी मदद न कर सकें उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए? क्या ऐसे व्यक्तियों की मदद करने या उन्हें प्रसन्नता प्रदान करने के विषय में हमें संकुचित मानसिकता का परिचय देना चाहिए?

एक पैंतालीस साल पुरानी घटना याद आ रही है। एक शादी में एक युवक भी सम्मिलित हुआ था। उसने शगुन के तौर पर एक सौ पैंतीस रुपए दिए। उस समय शगुन के लिफाफे प्रचलन में नहीं आए थे। शगुन के पैसे इकट्ठे करने के लिए किसी समझदार व्यक्ति को बिठा दिया जाता था। जिन्हें जो भी देना होता सीधे उस व्यक्ति के हाथ में दे देते और वह एक कापी में अथवा किसी कागज पर लिखता जाता। लोग प्रायः ग्यारह, इक्कीस, इक्यावन, एक सौ ग्यारह, एक सौ इक्यावन अथवा दो सौ एक रुपए देते थे। शगुन के एक सौ पैंतीस रुपए देखकर आसपास बैठे सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक सज्जन ने पूछ लिया , 'अरे भई, ये एक सौ पैंतीस रुपए किस हिसाब से दिए?' लड़के ने झट से जवाब दिया–पांच साल पहले मेरी बहन की शादी में इन्होंने एक सौ एक रुपए दिए थे। ग्यारह–ग्यारह रुपए अलग से दो बार और दिए थे। इस हिसाब से हुए कुल एक सौ तेईस रुपए। मेरी मां ने कहा था कि इनके जितने रुपए आए हुए हैं उनसे दस–बारह रुपए फालतू दे आना इसलिए एक सौ तेईस में बारह रुपए और जोड़कर एक सौ पैंतीस रुपए दे दिए।

इस प्रकार का लेन–देन हमें घोर व्यावसायिक बना देता है जिससे व्यक्तित्व में उदात्त जीवन मूल्यों का समावेश नहीं हो पाता व संबंधों में आत्मीयता नहीं आ पाती। किसी अवसर पर हमें ग्यारह सौ रुपए देने हों तो ग्यारह सौ रुपए न होने पर पांच सौ या कम भी दिए जा सकते हैं। बिल्कुल न होने पर किसी को शुभकामनाएं तो दी ही जा सकती हैं। किसी ने हमें मात्र सौ रुपए दिए हैं तो उसे सौ ही लौटाना जरूरी नहीं। हम आवश्यकतानुसार हजार, दो हजार अथवा ज्यादा भी लौटा सकते हैं। लेकिन नहीं ऐसा नहीं कर सकते। एक सिस्टम होता है उसी के अनुसार चलना पड़ता है। हम बहुत व्यवहारकुशल होते हैं। यही अति व्यवहार कुशलता हमारी वास्तविक प्रसन्नता में सबसे बड़ी बाधक होती है। कोई हमें प्रसन्नता का अवसर प्रदान करता है तो यह बड़ी अच्छी बात है, लेकिन उसे उसी अनुपात में थोड़ी सी अधिक प्रसन्नता कैसे लौटाई जा सकती है? प्रसन्नता कोई ऐसी चीज तो है नहीं जिसे किसी कैप्सूल में बंद करके किसी को दे दिया जाए। कोई हमें प्रसन्नता कैसे दे सकता है? प्रसन्नता तो एक आंतरिक भाव है, एक आदत है, एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। फिर भी भौतिक जगत में हम एक दूसरे को प्रसन्न करने का प्रयास करते रहते हैं।

यदि कोई हमें हमारी पसंद की कोई वस्तु देकर अथवा हमारी किसी अवसर पर आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता करके हमारी प्रसन्नता में वृद्धि करता है तो हम केवल उसे वही चीजें लौटाते हैं तो ये आपसी लेन–देन अथवा उधार चुकाने जैसा ही है। यदि कोई ऐसा भी नहीं करता तो वह तो संसार का निकृष्टतम व्यक्ति है, इसमें संदेह नहीं। यदि कोई हमारे साथ अच्छा व्यवहार करता है जिससे हमारी प्रसन्नता में वृद्धि होती है तो हमें भी उसके साथ उससे भी अच्छा व्यवहार करना चाहिए लेकिन क्या अन्य लोगों के साथ हमें अच्छा व्यवहार नहीं करना चाहिए? क्या हम स्वयं अच्छा व्यवहार करने का शुभारंभ नहीं कर

सकते? कई लोग प्रायः कहते सुने जाते हैं कि हमारे साथ जो जैसा व्यवहार करेगा हम भी उसके साथ बिल्कुल वैसा ही व्यवहार करेंगे। दूसरे लोग भी तो ये बात कह या कर सकते हैं। ऐसे में यदि हम ऐसे लोगों से अच्छा व्यवहार करेंगे तो वे भी निश्चित रूप से हमारे साथ अच्छा व्यवहार ही करेंगे। यदि हम दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने का अवसर देंगे तो उसके लौटकर आने की संभावना भी कम नहीं है। लेकिन प्रसन्नता किस रूप में या किसके द्वारा हमें मिलती है इस पर नियंत्रण करने का हमारा प्रयास हम तक प्रसन्नता पहुंचने का मार्ग अवरुद्ध कर देता है।

प्रायः ऐसा होता है कि यदि कोई हमें रोटी खिला देता है तो हम भी उसे रोटी खिलाने का कोई न कोई अवसर तलाशते रहते हैं और न इच्छा होने पर भी उसे जबरदस्ती खिलाकर ही मानते हैं। हम रोटी खिलाकर जिसका कर्ज उतारने की कोशिश करते हैं उसे उसकी जरूरत ही नहीं होती जबकि पास ही किसी अन्य व्यक्ति को उसकी सख्त जरूरत होती है। किसी दुर्घटना में घायल होने पर यदि कोई व्यक्ति हमारी मदद करता है तो क्या हमें उसका बदला उतारने की कोशिश में रहना चाहिए या ये संकल्प लेना चाहिए कि मैं जहां कहीं भी किसी घायल व्यक्ति को देखूंगा हर हाल में उसकी मदद करूंगा? कोई हमारी मदद करता है अथवा हमें प्रसन्नता का अवसर प्रदान करता है तो हम उसकी बजाय किसी अन्य को भी प्रसन्नता प्रदान करने अथवा उसकी मदद करने का प्रयास कर सकते हैं। यदि कोई भी हमारी मदद नहीं करता अथवा हमारे जीवन में प्रसन्नता के क्षण लाने का प्रयास नहीं करता तो भी हमें दूसरों की मदद करने अथवा दूसरों के जीवन में प्रसन्नता के क्षण लाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि इसी में वास्तविक प्रसन्नता निहित होती है।

जिसने हमारी मदद की, लोग प्रायः करते ही रहते हैं, यदि उसको हमारी मदद की जरूरत नहीं है तो उसकी मदद करने की बजाय किसी अन्य जरूरतमंद की मदद करना ज्यादा बेहतर होगा। अन्य की कोई परिभाषा अथवा सीमा नहीं होती। हम जहां भी जाएं लोगों में खुशी बांटने का प्रयास करें। यदि प्रसन्नता का यह चक्र एक बार प्रारंभ हो जाता है तो एक दिन सारा समाज प्रसन्नता से सराबोर हो जाएगा। जब सारा समाज प्रसन्नता से सराबोर हो जाएगा तो कोई ताकत नहीं जो हमें प्रसन्न होने से रोक दे। कोई हमें प्रसन्नता प्रदान करता है तो हम उसे भी प्रसन्नता लौटाएं इसका विरोध नहीं किया जा रहा है लेकिन हम स्वयं भी क्यों नहीं प्रसन्नता बांटने की पहल करें? यदि संसार में सबसे प्रसन्न व्यक्ति हैं तो वे ही हैं जो दूसरों के चेहरों पर मुस्कान लाने का कार्य करते हैं। अमरीका के कर्नल ऑल्कार्ट के साथ मिलकर थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना करने वाली रूसी महिला हेलन पेत्रोव्ना ब्लावात्स्की की याद आ रही है।

हेलन पेत्रोव्ना ब्लावात्स्की ने पूरी दुनिया की सैर की और इस घुमक्कड़ी में एक थैला हमेशा उनके साथ होता था। उनके इस थैले में रंग–बिरंगे, ख़ुशबूदार फूलों के बीज भरे होते थे। मेडम ब्लावात्स्की जहां कहीं से भी गुजरतीं और खाली जमीन पातीं वहीं वे फूलों के कुछ बीज मिट्‌टी में दबा देतीं। लोग उनसे पूछते कि जब ये बीज उगेंगे तथा पौधे बड़े होकर फूलों से लद जाएंगे तब उन फूलों की ख़ुशबू और रंगों का आनंद लेने के लिए तो आप यहां नहीं होंगी। फिर आप क्यों जगह–जगह फूलों के ये बीज बोती फिरती हैं? मेडम ब्लावात्स्की जवाब देतीं, 'यदि मैं इन फूलों को देखकर आनन्दित नहीं हो पाऊंगी तो क्या? आप सब तो इन फूलों को देखकर अवश्य प्रसन्न होंगे। अन्य जो लोग उस समय यहां आएंगे वे तो आनन्दित होंगे। फूल तो सब लोगों के लिए खिलेंगे और अपनी सुगंध बिखेरेंगे।'

दूसरों के जीवन में आनंद भर देने का निरंतर प्रयास करने वाले व्यक्ति न केवल महान होते हैं अपितु स्वयं भी प्रसन्नता से सराबोर रहते हैं। लोग उन्हें कभी नहीं भुला सकते। हमें भी यदि वास्तविक प्रसन्नता चाहिए तो हमें अपनी संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठकर अपने अस्तित्व को विराट बनाना होगा व अपने पोषित अहंकार को भी नष्ट करना होगा। मैं किसी का अहसान नहीं लेता अथवा किसी का अहसान उधार नहीं रखता–– यह भी एक संकीर्ण मनोभाव ही है। समाज के सहयोग के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। कोई किसी भी रूप में हमारी सहायता करता है तो उसके प्रति कृतज्ञता का भाव तो होना चाहिए, लेकिन उसको उतारने व कुछ ज्यादा देने के अहंकार से हमें पूर्णतः मुक्त होना चाहिए और जिनको हमारी सहायता की जरूरत है उनके लिए हमें बिना भेदभाव के आगे आना चाहिए। जहां तक किसी से प्राप्त सहायता अथवा व्यवहार द्वारा प्रसन्नता की बात है ये प्रसन्नता स्थायी नहीं हो सकती। परिस्थितियों के बदलते ही प्रसन्नता का लोप होना भी स्वाभाविक है। जब हम स्वयं में दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने की भावना विकसित कर लेते हैं तो हमारे अंदर प्रसन्नता का अजस्र स्रोत प्रवाहित होने लगता है। इसलिए कोई हमें सहयोग करे या न करे, किसी से हमें प्रसन्नता मिले या न मिले, हमें दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने के अवसरों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। इसी में निहित है वास्तविक प्रसन्नता का सूत्र। ❑❑❑

घर–परिवार

lUrku d thou e ekrk&firk dk LFkku

❒मनमोहन कुमार आर्य, चुक्खूवाला, देहरादून

मनुष्य के जीवन में पिता का महत्व निर्विवाद है। माता व पिता ही सब मनुष्यों के जन्मदाता होते हैं। पूर्वजन्म में मृतक आत्मा को मनुष्य योनि में जन्म युवा माता–पिताओं के द्वारा ही मिलता है। यह नियम परमात्मा ने बनाया है। यदि यह नियम न हो तो सृष्टिक्रम चल नहीं सकता। मनुष्य एक शिशु के रूप में जन्म लेता है, माता–पिता मिलकर उसका पालन–पोषण करते हैं व उसे उत्तम संस्कार देते हैं। उसका विवाह आदि भी सम्पन्न कराते हैं। वृद्धावस्था को प्राप्त होकर माता–पिता की मृत्यु हो जाती है। सभी माता–पिता अपनी–अपनी सन्तान के प्रति एक विशेष मोह पितृत्व व मातृत्व के बन्धन से बंधे हुए होते हैं। उनकी सन्तान कुरूप हो या सुरूप, स्वस्थ हो या रोगी, आज्ञाकारी हो अथवा अवज्ञाकारी, कैसी भी क्यों न हो, माता–पिता का आशीर्वाद एवं शुभकामनायें अपनी सभी सन्तान पर सदैव समान रूप से होती हैं।

यहां तक कि माता–पिता जीवन भर अपनी जो पूंजी संचित करते हैं, उसका भी वे अकेले उपभोग नहीं करते अपितु अधिकांश उपभोग उनकी सन्तानें ही करती हैं। महाराज दशरथ का ऐतिहासिक प्रसंग सबने सुन रखा है। उनके पुत्र को १४ वर्ष के लिए वन जाना पड़ा था। इस क्लेश से व्यथित होकर उन्होंने कुछ ही दिनों में अपने प्राण त्याग दिये थे। आज ऐसे कुछ उदाहरण मिल जाते हैं जहां एक माता अपनी सन्तान की रक्षा के लिये अपने प्राण दे देती है।

पिता एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने पुत्र की शिक्षा में उन्नति, उसके द्वारा धन प्राप्ति तथा यश प्राप्ति आदि के कार्यों में सर्वाधिक प्रसन्न होता है। पिता के इन्हीं गुणों के कारण पिता को देवता कहा जाता है। देवता वह होता है जो देता है, लेता नहीं है। वायु हमें प्राण वायु देती है इसलिये देवता कहलाती है। जल हमारी पिपासा शान्त करने सहित अनेक प्रकार से उपयोगी होता है, इसलिये जल भी देवता होता है। इसी प्रकार पृथिवी, अग्नि, आकाश, माता, पिता, आचार्य, राजा, विद्वान अतिथि आदि भी हमें कुछ न कुछ देने से देवता कहे जाते हैं। हमें इन सबके प्रति कृतज्ञता व सम्मान का सद्भाव रखना चाहिये। ऐसा करने से हमारे जीवन में निरभिमानिता का गुण उत्पन्न होता है। पाश्चात्य व कुछ अन्य जीवन पद्धतियों में यह भावना कुछ कम देखी जाती है। पाश्चात्य संस्कृति को भोगवादी और भारतीय वैदिक संस्कृति को त्याग व श्रेय प्रदान करने वाली संस्कृति कहा जाता है और वस्तुतः कई दृष्टि से यह उचित प्रतीत होता है।

पिता को 'पिता' अपनी सन्तानों की रक्षा करने के कारण कहा जाता है। महर्षि यास्क के अनुसार सन्तानों का पालक, पोषक तथा रक्षक होने से जन्म देने वाले देवता को पिता कहा जाता है। महर्षि मनु ने कहा है कि दस उपाध्यायों से बढ़कर आचार्य, सौ आचार्यों से बढ़कर पिता और एक हजार पिताओं से बढ़कर माता गौरव में अधिक है अर्थात् बड़ी है। मनुस्मृति में कहा गया है– 'पिता मूर्तिः प्रजापते' अर्थात् पिता पालन करने से प्रजापति का मूर्तिरूप है। प्रजापति परमात्मा को कहते हैं। इस प्रकार महाराज मनु पिता को प्रजापति कह कर बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। महाभारत के वनपर्व में यक्ष व युधिष्ठिर संवाद में यक्ष युधिष्ठिर से पूछते हैं– 'पृथिवी से भारी क्या है? आकाश से ऊंचा क्या है? वायु से भी तीव्र चलने वाला क्या है? और तृणों से भी असंख्य अर्थात असीम व विस्तृत एवं अनन्त क्या है? इसका उत्तर देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं–

माता गुरुतरा भूमेः पिता चोच्चतरं च खात्।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात्।।

इसका अर्थ है कि माता पृथिवी से भारी है। पिता आकाश से भी ऊंचा है। मन वायु से भी अधिक तीव्रगामी है। चिन्ता तिनकों से भी अधिक विस्तृत एवं अनन्त है। यहां पिता को आकाश से भी ऊंचा बता कर पिता का गौरव गान किया गया है।

पिता के विषय में महाभारतकार कहते हैं कि पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे श्रेष्ठ तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सारे देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पद्मपुराण में माता व पिता दोनों के गौरव का उल्लेख कर कहा गया है कि माता सर्वतीर्थमयी (सारे तीर्थ माता में हैं) है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है (पिता में सारे देवता विद्यमान हैं)। अतएव प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार से माता–पिता का आदर–सत्कार करना चाहिए। जो माता–पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपों से

युक्त सम्पूर्ण पृथिवी की परिक्रमा हो जाती है। माता–पिता को प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथिवी पर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है।

अथर्ववेद में बताया गया है कि जो जन्म देता है, जो भय से बचाता है और जो जीविका देता है– ये तीनों पितर वा पिता कहलाते हैं। चाणक्य नीति में भी पिता की महिमा का गान सुनने को मिलता है। वहां कहा गया है कि जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, विद्या देनेवाला, अन्न देनेवाला तथा भय से बचाने वाला; ये पांच पिता व पिता समान माने जाते हैं। पंचातयन पूजा में पिता को सत्कर्तव्य देव कहा गया है और उसकी माता के समान ही सेवा करने का उपदेश किया गया है। शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि जब तीन उत्तम शिक्षक– एक माता, दूसरा पिता तथा तीसरा आचार्य होते हैं तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। ऋषि दयानन्द ने कहा है कि वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् होता है जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का एक उदाहरण पिता की भक्ति का ऐसा उदाहरण है जो विश्व इतिहास में देखने को नहीं मिलता। इसे सुनकर ही मनुष्य का रोम–रोम पुलकित हो जाता है।

जब रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक का निर्णय हुआ तो रानी कैकेयी ने महाराज दशरथ के इस निर्णय का विरोध किया। वह महाराज दशरथ से रूठ गई और उनसे पूर्वकाल के देवासुर– संग्राम में राजा दशरथ द्वारा उन्हें दिये दो वर मांग लिये। उसने पहला वर भरत को अयोध्या का राजा बनाने तथा दूसरा राम को चौदह वर्ष का वनवास देने का मांगा। इस पृष्ठभूमि में राम जब कैकेयी के कक्ष में महाराज दशरथ के दर्शन करने पहुंचे तो उनकी दयनीय दशा देख कर उनसे इसका कारण पूछा। जब राजा दशरथ कुछ बोल नहीं पा रहे थे तो राम ने माता कैकेयी को पिता की इच्छा बताने को कहते हुए कहा था कि मुझे लानत है कि आप मुझ पर सन्देह कर रही हैं कि मैं अपने पिता की इच्छा व वचनों को पूरा नहीं करूंगा।

राम ने कहा था 'मैं तो अपने पिताश्री दशरथ की आज्ञा से अग्नि में भी कूद सकता हूं। तीक्ष्ण हलाहल जहर खा सकता हूं और समुद्र में भी कूद सकता हूं। वे तो मेरे गुरु, पिता, राजा और शुभ हितैषी हैं।' पिता को उन्होंने कहा था कि आपकी जो आज्ञा हो मुझे शीघ्र बतायें। मैं राम प्रतिज्ञा करता हूं कि उसे अवश्यमेव पूरा करूंगा। राम एक बात कहकर फिर उसके विपरीत दूसरी बात नहीं कहता अर्थात् वह अपने वचनों पर अटल रहता है। राम का यह कहना कि 'मैं पिता के संकेत मात्र करने पर जलती चिता वा अग्नि में कूद सकता हूं, हलाहल विष पी सकता हूं और समुद्र में भी कूद सकता हूं' यह सुन कर रोम रोम पुलकित हो जाता है। ऐसा वाक्य कहने से राम ने एक ऐसा आदर्श स्थापित किया है जिसकी आजकल विश्व में किसी पुत्र से अपेक्षा नहीं की जा सकती।

वैदिक धर्म एवं संस्कृति में पिता का गौरव पूर्ण स्थान है। माता का पिता से भी अधिक गौरव है। अतः देश व विश्व के सभी लोगों को अपने माता–पिता के प्रति अपने कर्तव्यों को समझना चाहिये। इसके अनुरूप ही देश में कानून बनने चाहियें। जिस समाज में पुत्र व पुत्रियां माता–पिता को पृथिवी से भारी और आकाश से भी ऊंचा मानते हैं, वह संस्कृति, वह देश व वह धर्म महान व महानतम होता है और वह सन्तान वस्तुतः महान एवं पूजनीय होती है। हमें वैदिक धर्म एवं संस्कृति सहित वैदिक इतिहास ग्रन्थों रामायण एवं महाभारत का भी अध्ययन करना चाहिये। इससे हम एक अच्छे पुत्र व मानव बन सकेंगे। हम आशा करते हैं कि पाठक लेख को पसन्द करेंगे। (इस लेख को तैयार करने में हमने आचार्य ब्र० नन्दकिशोर जी की पुस्तक 'पितृ–गौरव' से सहायता ली है।)

अस्तित्त्व

सिंकदर केवल छह वर्ष का था।

पटरानी, मां पिन्फाही ने, एक दिन पुत्र की कुहनी पर लगे मिट्टी के दाग को पोंछते हुए पूछा,''बेटे, तुम्हें किसी चीज की कमी नहीं है। तुम इस विशाल साम्राज्य के उत्तराधिकारी हो। तुम्हें इस समय, सबसे प्यारी चीज, कौन सी लगती है?''

''माँ !'' सिकंदर बोला। माँ ने उसकी मोहक नाक को स्नेहपूर्वक छूकर कहा,''नहीं। मेरा मतलब है, तुम्हें इस समय संसार की कौन–सी वस्तु, सबसे भली लगती है?''

''माँ से बड़ी भी कोई वस्तु है, माँ?'' सिकंदर का उत्तर सुनकर, माँ की आंखों में हर्ष के आंसू तैरने लगे। उसने राजकुमार को अंक में भरकर कहा,''तुम कोई साधारण बालक नहीं हो, सिकंदर। तुम्हारी उपलब्धियां निश्चय ही अद्वितीय होंगी, मेरे बेटे।''

सिकंदर ने माँ ने ममता–भरे हाथों को होंठो से लगाकर उत्तर दिया,''मेरी सारी उपलब्धियों का सेहरा भी, तुम्हारे ही माथे होगा, मां। अगर तुम तुझे यह संसार न दिखातीं, तो मेरा क्या अस्तित्व था?''

–उर्वशी केसर

❐अकेली खेत में बैठी २२ साल की विधवा रूपा ने दूर से अपने दोनों देवरों को अपनी तरफ आते देखा तो किसी अनिष्ट के भय से उसका कलेजा काँप उठा। बड़े देवर के हाथ में लाठी थी और वे तेज कदमों से उसकी ओर ही बढ़ रहे थे। रूपा के पति को मरे आज तीन महीने हो गए थे। रूपा ने झट से पास में खेलते अपने २ वर्षीय बेटे अमित को छाती से लगा लिया और निकट आते महातूफान का सामना करने हेतु अपनी समस्त ऊर्जा को समेटने लगी।

दोनों परिवारों में पिछले छः साल से कोई बात न हुई थी। वे एक दूसरे की शक्ल देखना भी पसंद न करते थे। भानु (रूपा का पति) बड़ा मेहनती था। उसके रहते रूपा ने घर बैठे खाया था। भानु के रहते रूपा कभी खेत न गई थी। ब्याह के एक साल बाद ही न्यारे (अलग घर) होने की नोबत आ गई थी। धर्मा (रूपा के ससुर) ने बहुत कहा कि बेटी! बच्चे अभी छोटे हैं और मैं बीमार रहता हूँ। घर में कोई कमाने वाला नहीं है। मगर वह घमंडी न मानी थी। रूपा बोली थी– कमाए सिर्फ मेरा मर्द और खाए सारा कुनबा, यह मैं न होने दूंगी। रूपा की जिद के आगे भानु भी टूट गया था। कुछ ही दिनों में धर्मा चल बसा था। सुरती (रूपा की सास) ने अकेले ही घर और खेत सम्भाला था। कई बार भानु ने माँ और भाइयों की मदद करनी चाही मगर रूपा की भयंकर कलह के चलते वह कुछ न कर पाता था।

अब पासा पलट गया था। १३ साल का भीमा अब १९ साल का एक बलशाली रूपवान युवक हो गया था। उसके बलशाली कंधे खेती के कामों पर टूट पड़ते और उसके कारण सुरती का परिवार अच्छे से खाने–पहनने लगा था। घर में दो–दो गाय थी और कुछ बचत भी हो जाती थी। उधर रूपा के बुरे दिन बिना बुलाये उसके द्वार पर मुंह बाए खड़े थे। पीलिया रोग से भानु आँखें बंद कर गया और २२ वर्षीय रूपा को विधवा कर गया। रूपा घर को संभाले या खराब होती फसल को देखे या बेटे अमित को संभाले? कुछ समझ नहीं आता था। कोमलांगी रूपा के सामने मुसीबतों का पहाड़ था। उसे लगता उसके पड़ोसी उसको तानें मारते होंगे या मेरी ही चर्चा करते होंगे। खेतों से घास पानी लाने की समस्या के चलते व तंगहाली के चलते दोनों गायों को बेचना पड़ा। दूध न मिलने से अमित का चेहरा दो महीने में ही मुरझा गया। वह दूसरे बच्चों को दूध पीता टुकर टुकर देखता रहता। हाय! रूपा बात भी करे तो किससे करे? पति की मौत के बाद पड़ोसी भी बात करना बंद कर दिए थे। उनको लगता था कि रूपा कुछ मांगने या कुछ काम में मदद करने के बारे में ही बोलेगी।

आज रूपा खेत में आई। थोड़ी देर काम करके थककर आराम करने आम के पेड़ की छाया में बैठ गई थी। दूर से आते अपने देवरों को देख उसका पुराना वैमनस्य जाग गया था। वह सम्भावित प्रश्नों और उनके सम्भावित उत्तरों को जल्दी जल्दी खोज रही थी कि दोनों देवर उसके पास आकर खड़े हो गए।

राम राम भाभी! –बड़े देवर ने बोला था। रूपा ने अनमने ढंग से राम–राम बोला, मगर टेढ़ापन न गया। भीमा बोला– भाभी, आप नाहक परेसान हुई, भला हमें बोल दिया होता, हम किसलिए हैं ? हमारे रहते अगर हमारी भाभी खेतों में परेसानी उठाये तो ऐसे भीमा को लानत है। कल से आप खेत नहीं आएँगी। सारे काम मैं देखूंगा। भैया मुझे बहुत चाहते थे। सबसे नजरें चुराकर भैया मुझे दूकान से जलेबी खिलाया करते थे। दूध नहीं होता तो मांग लेती, हम कौन बेगाने हैं? देखो, मुन्ना कितना मुरझा गया है–– कहते हुए भीमा ने मुन्ना को गोदी में उठा लिया और जी भरकर उसका मुंह चूमने लगा।

रूपा की नेत्र–गंगोत्री से गंगा–यमुना––पलक किनारों को तोड़कर बहनें लगी। जो देवर उसे फूटी आँखों न सुहाते थे, आज वही उसके लिए सहारा बने खड़े थे। उसके हृदयाकाश से भीमा के लिए आशीर्वादों की वर्षा हो रही थी। उसे सारा संसार सुंदर दिखाई देने लगा था। संसार के प्रति वह विश्वास से भर गई थी। उसने ९ साल के प्रताप (छोटा देवर) को सीने से लगाकर प्यार किया। कुछ देर बाद दोनों भाइयों में अमित को गोद उठाने के लिए प्रेममय झगड़ा होने लगा। भीमा कभी उसकी नन्ही उँगलियों को चूमता और कभी उसे ऊपर उछालकर डराता। कभी उसे प्यार भरी डांट पिलाता और अगले ही पल उसे सीने से चिपका लेता। रूपा इस अनुपम दृश्य के आनंद–सागर में डुबकियां लगा रही थी। उसके रोम–रोम से शुभाशीष निकल रहे थे। उसे लगा वह बहुत बड़े साम्राज्य की स्वामिनी है और उसकी प्रजा में सब सुखी व धनाढ्य लोग हैं।

इतने में सुरती भी वहां आ पहुंची। रूपा ने सालों बाद उसके पैर दबाए और आशीर्वाद लिया। पोते को गोदी में उठाकर सुरती को लगा कि जैसे जीवन का अंतिम लक्ष्य पा लिया हो। चिंता मत कर बेटी! भगवान सब ठीक करेंगे– कहती हुई सुरती ने रूपा के सिर पर हाथ रखा।

सुरती बोली– तेरे दोनों देवर रात मुझसे बहुत झगड़ा किये, बोले – माँ ! हमसे भाभी का हाल नहीं देखा जाता। लोग क्या कहेंगे? बुरी हो या अच्छी हो! है तो अपना ही खानदान! माँ, बहुत बार मन करता है– मुन्ना को उठाकर जी भरकर प्यार करूँ। मगर भाभी ने कुछ कह दिया तो हमारा दिल खराब होगा, इस डर से मन मसोसकर रह जाता हूँ। हमारे साथ रहेगा तो मुन्ना खूब दूध पियेगा और मुरझाएगा भी नहीं। ऐसा कहते हुए सुरती ने आंसू बहाती बहु को सांत्वना दी और बोली– आज ही मैंने पंडित जी से बात की है। भीमा और तेरी जोड़ी को भगवान सुखी बनाए।

रूपा का मन–मयूर नाच उठा। उसे लगा– किसी ने उसकी डूबती नैया को कोमल स्पर्श देकर रंगीन झील पर ला छोड़ा हो। उसके प्राण–भुवन में संगीत के सातों सुर एकसाथ गुंजित हो उठे। उसे लगा–वह खुले आंगन में नाच रही है और लोग पुष्प वर्षा कर रहे हैं। मन के भाव प्रकट न हों, इसलिए उसने अपनी नीली चुन्नी से अपने चंद्र–मुख को छिपा लिया और नीची गर्दन करके अपनी मूक सहमति दे दी। उधर भीमा जो मन के भाव छिपाने में सिद्धहस्त न था, उसने हल्की मुस्कान के साथ उलाहना भरी नजरों से माँ की ओर देखा और मन्द–मन्द मुस्कुराता हुआ बैलों को पानी पिलाने का बहाना बनाकर वहां से चला गया।

जिन परिवारों के संस्कारों में करुणा, प्रेम और त्याग का मिश्रण होता है व नारी का सम्मान होता है, उन्हीं के महलों में शान्ति व आनंद के मंगलगीत गुंजायमान होते हैं।

गाय का दूध या मांस : आर्य मल्ल चौधरी धनत्तरसिंह का रोमांचक प्रसंग

❒**चौधरी सोनू पूनिया**, प्रस्तुति : **जयदीप सिंह नैन**

हापुड़ के ग्राम छपकौली के रहने वाले धनत्तर सिंह आर्य विशुद्ध आर्यसमाजी, गौरक्षक और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, जो नारी शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनके पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरणसिंह जी से नजदीकी संबंध थे। चौधरी साहब यशस्वी आर्यसमाजी और कुश्ती प्रेमी थे।

२७ अक्टूबर १९८८ को हापुड़ के सिकंदर गेट पर कुश्तियां हो रही थीं जो कि मुस्लिम बहुल क्षेत्र है। उस समय सुलेमान पहलवान के नाम का बोलबाला था जो कि एक कसाई था और दंगल में भाग लेने पहुंचा हुआ था। संयोग से चौधरी धनत्तर सिंह भी कुश्ती देखने के लिए पहुंचे हुए थे, हालांकि मुस्लिम क्षेत्र होने के कारण सनातनी दर्शक और पहलवान यहां कुश्तियां लड़ने और देखने कम ही जाते थे। चौधरी साहब का गांव नजदीक ही था। वे अपने साथियों के साथ सुबह ही दंगल में पहुंच चुके थे, रुतबा इतना कि आस–पास के गांव उनको बखूबी जानते–समझते थे।

कुश्तियां शुरू हुईं और सुलेमान कसाई जिसकी लंबाई सवा ६ फुट और वजन १०० किलो से ऊपर था, लंगोट घुमाता हुआ अखाड़े के पास पहुंचा और यह कहते हुए ललकारने लगा कि गऊ का मांस खाता हूं, कोई भी हिंदू मेरा मुकाबला नहीं कर सकता। अगर किसी को संदेह है तो वह आकर कुश्ती लड़ने के लिए अखाड़े के पास पहुंचे। यह गर्वोक्ति सुनकर चौधरी साहब का खून खौल उठा। उनकी भुजाएं सुलेमान का घमंड तोड़ने के लिए फड़कने लगीं।

चौधरी साहब ने कुर्ता और खंडवा अपने साथियों को दिया, धोती को खींचकर बांधा। अखाड़े की तरफ दौड़ लगा दी और लंगोट घुमा रहे सुलेमान का हाथ पकड़ लिया। चौधरी साहब औसत कद–काठी के मल्ल थे जो सुलेमान के सामने कमजोर और छोटे नजर आ रहे थे।

दंगल देखने पहुंचे विधर्मी हंसने लगे और चौधरी साहब को ऊंट के साथ बकरी का जोड़ बताने लगे। किंतु उनकी ऐसी बातें सुनकर चौधरी साहब रत्ती भर भी हतोत्साहित नहीं हुए। ५ मिनट का समय रखकर कुश्ती आरंभ हुई। बुजुर्ग बताते हैं कि लगभग २ मिनट में ही सुलेमान के होश फाख्ता हो गए। वह हांफने लगा। तीसरी मिनट में चौधरी साहब ने ऐसा धोबी पछाड़ लगाया कि चित होने के साथ ही सुलेमान का एक हाथ और गर्दन टूट कर मौके पर ही मौत हो गई।

अपने मजहब के नामचीन पहलवान की मौत से वहाँ के दर्शक, रेफरी और कुश्ती के आयोजक क्षुब्ध हो गए और धारदार हथियार निकाल कर जान से मारने की नियत से चौधरी साहब की ओर बढ़ने लगे। चौधरी साहब ने उन्हें अपनी ओर आता देख अखाड़े की बैरिकेडिंग के लिए लगाई गई एक बल्ली उखाड़ ली। उनके साथ आए दर्शक भी अपने लाठी–डंडे लेकर मदद के लिए आ गए। फिर तो विपक्षियों में भी दहशत घुस गई और वे वहीं ठिठक गए। चौधरी साहब अपने साथियों सहित वहां से सकुशल निकल आए। उस दिन से यहां पर कुश्तियां होनी बंद हो गईं और चौधरी साहब के पराक्रम का डंका बजने लगा।

चौधरी साहब ने सैकड़ों नवयुवकों को बिना हथियार के आत्मरक्षा, लाठी डंडे से रक्षात्मक तथा आक्रमण शैली में निपुण किया। कितनी ही गरीब कन्याओं की शादियां कराईं। गुरुकुल ततारपुर, हापुड़, गुरुकुल पूठ, बहादुरगढ़ हापुड़ को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्रोत्साहन दिया। वे हमेशा दूध–घी खाने और शाकाहारी रहने के लिए प्रेरित करते थे। क्षेत्र में आज भी चौधरी साहब को बड़ी श्रद्धा और आदर भाव से लोग याद करते हैं। उनके द्वारा सामाजिक कार्यों में दिया योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा। ❒❒❒

vo/;k xk; dk o/k er djk!

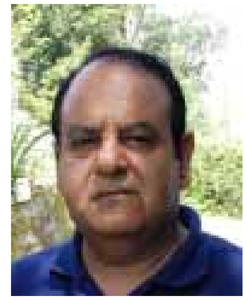

❐रामफलसिंह आर्य (9418277714) C-18,
तृतीय तल, आनन्द विहार उत्तम नगर, नई दिल्ली–५९

गौ शब्द संस्कृत भाषा में बड़े ही विशाल अर्थ वाला है।

हमारे इस लेख के शीर्षक को पढ़कर पाठक के मन में यह विचार अवश्य ही उठ रहा होगा कि हम गौहत्या पर कुछ कहने लगे हैं। जी हां, बात कुछ–कुछ तो सत्य है, परंतु पूरी सत्य नहीं है, क्योंकि गौ शब्द संस्कृत भाषा में बड़े ही विशाल अर्थ वाला है। इसका अर्थ चार पैरों वाला पशु 'गाय' तो है ही, परंतु इसके साथ–साथ यह अन्य भी कई महत्वपूर्ण अर्थों में प्रयुक्त होता है– और वे अर्थ भी यही सिखलाते हैं कि इस गौ का वध कदापि मत करना। यह पूर्ण रूप से अवध्य है। बहुत ही भोली है। जब तुम इसे मारोगे तो यह बड़ी ही सरलता से मर जाएगी, लेकिन इसकी यह सरलता से होने वाली मृत्यु मारने वाले के लिए बहुत बड़ी विपत्तियों का भंडार खोल देती है, जिससे वह कभी सुख को प्राप्त नहीं कर पाता। अपितु कहना चाहिए कि वह अपने लिए विनाश का द्वार खोल लेता है। अपने विषय में आगे बढ़ते हुए हम ऋग्वेद (८/१०१/१५) का एक बड़ा प्रसिद्ध मंत्र उपस्थित कर रहे हैं–

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ।।

इसका शब्दार्थ है– मैं (चिकितुषे जनाय) प्रत्येक चेतना वाले मनुष्य को (नु प्रवोचम्) कह देता हूं कि (अनागाम्) निरपराध (अदितिं) अहन्तव्या (गाम्) गौ को (मा वधिष्ठ) कभी मत मार। क्योंकि यह (रुद्राणाम् माता) रुद्र देवों की माता है, (वसुनां दुहिता) वसु देवों की कन्या है और (आदित्यानां स्वसा) आदित्य देवों की बहन है तथा (अमृतस्य नाभिः) अमृतत्व का केंद्र है।

इस शब्दार्थ को पढ़कर यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यहां पर केवल गाय पशु से अभिप्राय नहीं है। यहां पर कुछ और ही लक्षित किया जा रहा है। वह कौन सी गाय है? और इन देवताओं से अर्थात् रुद्र, वसु और आदित्य से उसका संबंध कैसे है? इसी पर विचार करना है। जैसे कि हम ऊपर कह चुके हैं कि गौ शब्द के अनेक अर्थ यथा– किरण, वाणी, पृथिवी आदि भी हैं। अतः निश्चित रूप से यह संबंध कहीं न कहीं इनसे भी सिद्ध हो सकेगा। तो आइए चलते हैं वाणी की ओर!

निःसंदेह यहां पर वाणी की ओर ही संकेत है। यह वाणी ऐसी देवी है जिसका वध कदापि नहीं किया जाना चाहिए। शरीर में जब देवताओं का प्रवेश हुआ तो सबसे पहले वाणी ही आन कर इसमें विराजमान हुई। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखें प्राविशत्।। (ऐतरेयोपनिषद्) अर्थात् अग्नि ही वाणी बनकर मुख में आ बैठी। यह वाणी ही जीवन के सभी व्यवहारों को सिद्ध करवाने वाली है। यही सब को आगे लेकर चलती है। क्यों? क्योंकि इसका देवता ही अग्नि है अतः आगे लेकर तो यही जाएगी। अग्नि इसीलिए अग्नि है कि यह अग्रणी= सबसे आगे रहता है। यहां तक कि संध्या के मंत्रों में भी जो शरीर के अंगों का मार्जन करने के लिए बढ़ते हैं तो सर्वप्रथम स्थान वाक् का ही आता है। यही क्रम हवन से पहले अंग स्पर्श में रखा गया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि सब अंगों में वाणी की महत्ता सर्वप्रथम है।

उक्त वेदमंत्र में वाणी को आदित्य देवों की बहन कहा गया है। तैंतीस देवताओं की संख्या में आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्यों का वर्णन आता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष, चंद्रमा, सूर्य और नक्षत्र=आठ वसु; प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय तथा जीवात्मा=ग्यारह रुद्र; संवत्सर के बारह महीने=बारह आदित्य; इंद्र और प्रजापति– ये कुल मिलाकर ३३ देव कहलाते हैं। वेद मंत्र कह रहा है कि यह गौ=वाणी रुद्रों की माता है। कैसे? क्योंकि यह प्राणों की और सब चेष्टाओं की माता है। हमें जब किसी को प्रेरणा देनी होती है, आदेश देना होता है, उपदेश देना होता है, प्रार्थना करनी होती है, सांत्वना देनी होती है, हंसाना होता है– तो ये सब व्यवहार वाणी से ही उत्पन्न होते हैं। यही कार्य तो रुद्रों के हैं। रुद्र किसे कहते हैं? रुलाने वाले को रुद्र कहते हैं। विचार कीजिए कि किसी अन्य व्यक्ति की कही हुई बात से हमारे अंदर हर्ष– शोक– क्रोध– भय आदि जब उत्पन्न होते हैं तो प्राणों की गति सामान्य नहीं रहती है, तीव्र हो जाती है। यहां तक कि ईश्वरोपासना में भी जब मन एकाग्र होकर प्रभु प्रेम में बंधा उसकी अनुभूति

की एक झलक मात्र ही पाता है तो सांसों का प्रवाह भी तीव्र होने लगता है। गदगद कंठ से पुकारने पर भी श्वास तीव्र गति से चलते हैं। क्यों? क्योंकि वाणी अपने स्वरूप में स्थित होकर रुद्रों को प्रेरणा दे देती है, इसीलिए उसे रुद्रों की माता कहा गया है। अगला पद यह कह रहा है कि यह वसुओं की दुहिता=पुत्री है। कैसे? यह आत्मा की वासक अग्नियों से प्रकट होती है। इसे भी समझने का प्रयास कीजिए। अपनी पुस्तक 'वर्णोच्चारण शिक्षा' में महर्षि दयानंद जी एक सूत्र देते हैं कि उच्चारण होता कैसे है? लिखते हैं–

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया।
मनस्तु कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्।।

अर्थात् जब आत्मा– किसी तत्व का निर्णय करके उसे प्रकट करने की इच्छा से मन को प्रेरणा देता है तो मन देह की अग्नि पर प्रभाव डालता है। अग्नि वायु को बाहर फैंकता है और वायु यथास्थान पहुंचकर वर्णोच्चारण कराता है। ये अग्नि और वायु क्या हैं? ८ वसुओं में से ही तो हैं। उन्हीं से यह वाणी प्रकट वा उत्पन्न की जा रही है। अतः सिद्ध हुआ कि वसुओं की पुत्री है।

अब तृतीय पद पर आ जाइये। वह कह रहा है कि आदित्यों की बहन है। इस पर विचार करते हैं। आदित्यों का क्या कार्य है? संवत्सर को आगे लेकर जाते हैं। और वाणी क्या करती है? हमारे सब व्यवहारों को सिद्ध करती हुई हमें आगे लेकर चलती है।

समान व्यवहार वाले होने से वाणी और आदित्य भाई बहन कहे गए हैं। आदित्य भले हमारी आयु को लेते जाते हैं, परंतु आगे लेकर जाएंगे तभी तो आयु को लेंगे। यदि वे आगे न लेकर जाएं तो आयु का लेना भी संभव न हो सकेगा। यही दशा वाणी की भी है। तनिक विचार कीजिए कि यदि वाणी न हो तो संसार का सारा कार्य, सारा व्यवहार ही ठहर जाए। उसी की सहायता से हम आगे चलते हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या है, पशु पक्षियों में भी वाणी (यद्यपि उसे वाणी नहीं, स्वर कहना अधिक उचित है) के बदलने से वे एक दूसरे के व्यवहार को जान लेते हैं। भेड़ियों, बंदरों, कुत्तों, गायों, बगुलों, कौओं आदि में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शेर की दहाड़ के विभिन्न प्रकार के उतार–चढ़ाव उसके व्यवहार को भली–भांति दर्शा देते हैं।

चलिये, इस वाणी रूपी गौ की हत्या कैसे होती है और उसके क्या–क्या भयानक दुष्परिणाम होते हैं, यह देख लेते हैं। सत्य में प्रतिष्ठित, संयम से शुद्ध की गई वाणी का आशीर्वाद आदि के रूप में फलना–फूलना हम सभी जानते

यह हो सकता है कि किसी को वाणी का रहस्य समझ में न आवे। यह भी हो सकता है कि स्वार्थ और द्वेषाग्नि के कारण भूमि माता का भी ध्यान न आए। यह भी हो सकता है कि पद लिप्सा के आगे राष्ट्रधर्म भी गौण हो जाए, परंतु साक्षात्–– सामने–– प्रत्यक्ष खड़ी हुई– दूध, घी, दही, मक्खन, पनीर, लस्सी आदि से अमृत की वर्षा करती हुई गाय को केवल मांस के लिए मार दिया जाना तो अत्यंत क्रूरतापूर्ण कृत्य है।

ही हैं, लेकिन कठोर व्यंग्यात्मक उपहास, क्रूर शाप आदि निकलना भी किसी से छुपे हुए नहीं हैं। श्रेष्ठ वाणी जहां घाव पर मरहम का काम देती है, वहीं कठोर वाणी ऐसे भयानक घाव भी दे देती है कि जिनका भरना कभी संभव नहीं हो पाता। इस कटु कठोर वाणी ने जगत् में क्या–क्या अनर्थ, कितने बड़े–बड़े युद्ध नहीं करवाए! झूठ, निंदा, कटुता आदि भावों से पूरित वाणी का प्रयोग ही तो वाणी की हत्या करना है, जिसके फलस्वरूप अनेक दुःखों और कष्टों को झेलना पड़ जाता है। इसीलिए वेद मंत्र सावधान करते हुए कहता है कि तू इसकी हत्या मत कर। यह मारने योग्य नहीं है, अपितु यह तो अमृत की नाभि अर्थात केंद्र है। सब प्रकार से इसकी रक्षा कर। यही तुम्हारा कभी क्षय न होने वाला अमृत है, भूषण है। महाराज भर्तृहरि ने कहा ही तो है– (नीतिशतक १९)

केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणाणि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

भुजबंद और चंद्रमा के समान उजले हार मनुष्य को सुशोभित नहीं करते। स्नान करना, चंदन लगाना, फूल माला पहनना और सजाए हुए बाल भी पुरुष की शोभा नहीं बढ़ाते। शुद्ध रूप में धारण की हुई एकमात्र मनुष्य की वाणी ही मनुष्य की शोभा बढ़ाती है। शेष सब गहने सदा ही भ्रष्ट होते रहते हैं। केवल वाणी रूपी गहना ही सच्चा आभूषण है। ऐतरेय ब्राह्मण का ऋषि कहता है–

ओष्ठाभिधाना नकुलीदन्तैः परिवृता पँक्ति सर्वस्यै।
वाच् ईशाना चारु मामिह वादयेत्।। (ऐतरेय ३/२/५)

हे जिह्वा! तू साक्षात् महारानी है। दो ओंठ तेरे आवरण हैं। दंतपंक्ति तेरी सुरक्षा पंक्ति है। तू सर्वस्वामिनी

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

ईशोपनिषद्

व्याख्याकार : महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

प्रस्तुति : आर्य मिलन 'अवत्सार' जयपुर

उपोद्घात

उपनिषद्-भवन की आधारशिला ईशोपनिषद् है। इस उपनिषद् में जो शिक्षाएँ दी गयी हैं, उनको वेद अथवा उपनिषद् की शिक्षा का सार कह सकते हैं और इन्हीं शिक्षाओं का विस्तार पश्चात् की उपनिषदों में किया गया है। उदाहरण की रीति से ईशोपनिषद् की एक शिक्षा है- 'नैनदेवा आप्नुवन् (देखो मन्त्र 4) अर्थात् 'इन्द्रियों से ईश्वर प्राप्तव्य नहीं है।' बाद की सम्पूर्ण दूसरी (केन) उपनिषद् में इसी शिक्षा का विस्तार किया गया है।

ईशोपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है। वेद और उपनिषद् के पाठ में अन्त में थोड़ा-सा अन्तर अवश्य है, परन्तु उससे आशय का भेद नहीं होता और यह अन्तर भी केवल इसलिए है कि वर्तमान ईशोपनिषद् यजुर्वेद की काण्वशाखा का ज्यों का त्यों ४०वाँ अध्याय है। यजुर्वेदानुसार पाठ परिवर्तित कर दिया है। इस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा (ब्रह्मविद्या) वेद-मूलक है। और भी अनेक स्थलों पर वेदों में ब्रह्मविद्या की शिक्षा का मूल पाया जाता है। उदाहरण की रीति से देखो निम्न वाक्य -

वेनस्तत्पश्यन् निहितं गुहा सत्।।1।। -यजुर्वेद 32/8

अर्थात् विद्वान् उसको गुहा (हृदय) में देखता है।

आत्मनात्मानमभि संविवेशष्।।2।। -यजुर्वेद 32/11

अर्थात् (जीव) आत्मा के द्वारा आत्मा (ब्रह्म) में प्रवेश करता है। इस प्रकार की अनेक शिक्षाएँ चारों वेदों में फैली हुई पायी जाती हैं। जब हम इस प्रकार ब्रह्म (परा) विद्या को भी वेद मूलक कहते हैं, तब स्वाभाविक रीति से हमारे सम्मुख मुण्डकोपनिषद् का प्रारम्भिक वाक्य (देखो 1/1/5) आता है, जिसमें वेद और वेदांगों की गणना अपरा विद्या में की गयी है। यदि ब्रह्म (परा) विद्या भी वेदमूलक है, तब वेदों को 'अपरा' क्यों कहा गया है? इसका उत्तर स्पष्ट है कि वेद केवल परा विद्या का पुस्तक नहीं है। वेद में परा (ब्रह्म) और अपरा (लोक) दोनों प्रकार की विद्याओं का समावेश है। दोनों शिक्षाओं के सम्मिलित होने से उन्हें केवल परा (ब्रह्म) विद्या का पुस्तक नहीं कह सकते। इसलिए उनकी गणना केवल परा विद्या में नहीं की गई है। अस्तु। ब्रह्म-विद्या के वेदमूलक होने में किसी को किन्तु परन्तु करने की जरा भी गुंजाइश नहीं है। इस ईशोपनिषद् में जो शिक्षाएँ दी गई हैं, उनके प्रकार पर दृष्टिपात करने ही से प्रकट हो जाता है कि उनमें ब्रह्म-विद्या का मूल मौजूद है। इस उपनिषद् के चार भाग हैं-

प्रथम भाग- प्रथम के तीन मन्त्र पहला भाग है, जिनमें कर्तव्य-पञ्चक का विवरण दिया गया है अर्थात् उनमें पाँच कर्तव्यों का विधान किया गया है, जिन को आचरण में लाने ही से कोई व्यक्ति ब्रह्म-विद्या में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त किया करता है। वे पाँच कर्त्तव्य ये हैं-

(1) ईश्वर को प्रत्येक स्थान में मौजूद समझना।

(2) संसार की समस्त वस्तुओं को भोगते हुए यह भावना रखना कि वे सब वस्तुएँ ईश्वर की हैं। भोक्ता को इनमें केवल प्रयोगाधिकार है।

(3) किसी का धन या स्वत्व नहीं लेना।

(4) कर्तव्य समझ और फल की आकांक्षा से रहित होकर सदैव कर्म करना।

(5) अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण न करना।

दूसरा भाग- उपनिषद् का दूसरा भाग 4 से 8वें मन्त्र तक है, जिसमें ब्रह्मविद्या का वर्णन है। और इन्हीं 5 मन्त्रों में ब्रह्मविद्यामूलक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

तीसरा भाग - उपनिषद् का तीसरा भाग 9 से 13वें मन्त्र तक पूरा होता है। इसमें मनुष्य के कर्तव्य का विधान किया गया है कि किस प्रकार वह ब्रह्मविद्या को प्राप्त करे।

चौथा भाग- सत्रहवें मन्त्र में एक महत्त्वपूर्ण परीक्षा की बात कही गयी है और अन्तिम अट्ठारहवें मन्त्र में प्रभु से सफलता की प्रार्थना की गई है और इसी प्रार्थना के साथ उपनिषद् समाप्त हो जाती है। उपनिषद् के इस स्थूल विवरण से ही उपनिषद् की उपनिषद् (अध्यात्म विद्या) रहस्य महत्ता प्रकट होती है। इतने थोड़े मन्त्रों में इतनी महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं का विधान ही वेद की महत्ता का द्योतक है। समय समय पर अनेक विद्वानों ने इस उपनिषद् पर विचार किया और बहुतों ने उसकी टीकाएँ लिखीं और व्याख्याएँ भी की हैं। इनमें से

प्रायः 41 टीकाओं के देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इनमें सब से पुरानी टीका संस्कृत में श्री शंकराचार्य की है। विधर्मियों में सब से पुराना अनुवाद शाहजादा दाराशिकोह का किया हुआ फारसी भाषा में है। इस निष्पक्ष शाहजादे की लिखी हुई भूमिका प्रकट करती है कि उसे शान्ति केवल उन्हीं उपनिषदों की शिक्षा से प्राप्त हुई थी। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शौपनहार ने अपनी जगत् प्रसिद्ध फिलासफी का आश्रय छोड़कर उपनिषदों ही को जीवन और अन्त दोनों कालों के लिए शान्तिदायक समझा था। [In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of Upnishads- It has the solace of my life and it will be the solace of my death- - Schopenhaur]

निष्कर्ष यह है कि इस प्रकार की कोई न कोई विशेषता अधिकांश टीकाओं में मिलती है। शंकराचार्य जी की टीका की विशेषता यह है कि उन्होंने उपनिषद् के मन्त्रों को अद्वैतपरक लगाया है। उसके विपरीत श्री रामानुजाचार्य उसे विशिष्टाद्वैतपरक और श्री माधवाचार्य उसे द्वैतपरक समझते हैं। वास्तव में उपनिषद् क्या है ? इसका उत्तर उपनिषद् के अक्षरार्थ से प्राप्त होता है। मैंने यद्यपि अनेक टीकाएँ देखीं, परन्तु अन्त में उन टीकाओं की विभिन्नता देखते हुए सिद्धान्त यही स्थिर किया कि उपनिषदों का भाव उसके ही अक्षरों से समझना चाहिए। इसमें किसी भी टीका का अनुकरण नहीं किया गया है। जो कुछ लिखा गया वह वही है, जो उपनिषद् के अक्षरों से समझा जा सकता है या कम से कम मैंने समझा है।

स्वाध्यायशील नर-नारी इन पृष्ठों को पढ़कर विश्वास है कि इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। एक दूसरा कारण इन पृष्ठों के लिखने का यह भी था कि प्रायः 4-5 वर्ष से जब से मैंने उपनिषद् की कथाओं का प्रचार शुरू किया था, तब से कथा सुनने वाले तकाजा कर रहे थे कि उसी ढंग से जिससे मैं कथाएँ कहा करता हूँ, उपनिषदों की टीका लिख दें। यद्यपि यह समझ कर कि जब अनेक टीकाएँ पहले ही से मौजूद हैं, फिर क्यों कोई नवीन टीका और लिखी जाय; मैं बराबर टीका लिखने की बात टालता रहा।

अन्त में विवश होकर अध्यात्म-विद्या के प्रेमियों की इच्छा के सामने सिर झुकाना ही पड़ा। मैं शायद और भी कुछ देर तक इस बात को टालता, परन्तु 'प्रभात' के सम्पादक प्रिय धर्मेन्द्रनाथ जी के तकाजों ने, कि 'प्रभात' के लिए अध्यात्म-विद्या के सम्बन्ध में कुछ न कुछ लिखना ही चाहिए। इस काम को पूरा करने के लिए बाधित किया और उन्हीं के 'प्रभात' में लिखे हुए लेखों का यह संग्रह है।

यदि इन पृष्ठों के स्वाध्याय से किन्हीं का कुछ भी मनोरंजन होगा तो उसका श्रेय धर्मेन्द्रनाथ जी को ही प्राप्त समझना चाहिए।

– नारायण स्वामी

ईशोपनिषद्

ईशा वास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।1।।

१- (इदं, सर्वम्) यह सब (यत्किञ्च) जो कुछ (जगत्याम्) पृथ्वी पर (जगत्) चराचर वस्तु है (ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् आच्छादित है।

२- (तेन) उसी ईश्वर के (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थों से (भुञ्जीथाः) भोग कर।

३- (कस्यस्वित्) किसी के भी (धनम्) धन का (मा गृधः) लालच मत कर।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।२।।

४- (इह) यहाँ (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन्नेव) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (कर्म) कर्म (न, लिप्यते) नहीं लिप्त होता है (इतः) इससे (अन्यथा) भिन्न और कोई मार्ग (न) नहीं है।

असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।३।।

५- (ये के च) जो कोई (आत्महनः) आत्मा के घातक (आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाले) (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धेरे से (आवृताः) आच्छादित हुए (ते असुर्य्याः नाम लोकाः) वे प्रकाश-रहित नाम वाले जो लोक-योनियाँ हैं, (तान्) उन (योनियों) को (अपि गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

व्याख्या

मनुष्य शक्ति का केन्द्र है। शक्ति उसी के भीतर निहित है। इन्हीं शक्तियों के विकास का नाम शिक्षा है। मनुष्य जीवन की सफलता का भेद यही शक्ति विकास है। यही शक्ति विकसित होकर अभ्युदय और निःश्रेयस, लोक और परलोक की सिद्धि का कारण बनती है। शक्ति-विकास के कार्यक्रम का ही नाम अध्यात्म (योग) विद्या है। योग कर्म में कुशलता का नाम है, जैसा कि गीता में कहा गया है कि- 'योगः कर्मसु कौशलम्।। महामुनि पतञ्जलि ने भी योग को क्रिया (कर्म) योग ही कहा है और उसके केवल तीन भाग किए हैं- 'तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।' (योगदर्शन 2/1) अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर-भक्ति करने ही से योग की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

सुतराम् क्रिया (कर्म) ही योग है। उस क्रिया को करने के लिए सब से पहला साधन तप है। तप व्रतानुष्ठान को कहते हैं। व्रत नाम कर्तव्य-प्रतिज्ञा का है। शक्ति के विकास के लिए जिस तप को करना, जिस व्रत का अनुष्ठान करना या जिस कर्तव्य का पालन करना है, उसी का नाम कर्तव्य-पञ्चक है अर्थात् क्रियात्मक जीवन बनाने के लिए जिस प्रकार के वातावरण (Atmosphere) के उत्पन्न करने की जरूरत है, वह उन पाँच कर्तव्यों के पालन करने से उत्पन्न होता है, जिसका नाम कर्तव्य-पञ्चक है। यह उपनिषद् की आदिम शिक्षा है। इन्हीं कर्तव्यों के पालन करने से किसी भी व्यक्ति को वह अधिकार प्राप्त हुआ करता है, जिसका नाम अध्यात्म-विद्या में प्रवेशाधिकार है। इसलिए उपनिषदों की शिक्षा के वर्णन करने में पहला स्थान इसी कर्तव्य-पञ्चक को दिया गया है।

पहला कर्तव्य –

पहली बात यह है कि मनुष्य उच्च प्रकार की आस्तिकता के भावों से अपने हृदय को भर ले। इसका साधन यह है कि मनुष्य ईश्वर को परिच्छिन्न (एकदेशीय) न मानकर उसे विभू व्यापक रूप में माने, अर्थात् जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु आकाश में है और प्रत्येक वस्तु के भीतर भी आकाश है, इसी प्रकार से ईश्वर भी जगत् में ओत-प्रोत हो रहा है। कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो ईश्वर में न हो और जिसमें ईश्वर न हो। इस सिद्धान्त के आचरण में आने से मनुष्य का हृदय लचकीला हो जाता है। हृदय के लचकीला होने के लिए दो बातों की जरूरत होती है। प्रथम वह निष्पाप हो, दूसरे उसमें प्रेम की मात्रा अधिकता से हो। ये दोनों बातें ईश्वर को उपर्युक्त भाँति सर्वव्यापक मानने से मनुष्य में आया करती हैं।

मनुष्य पापाचरण के लिए सदैव एकान्त की खोज किया करता है। चोर इसलिए रात्रि को सफलता का साधन समझता है, क्योंकि उसमें एक प्रकार के एकान्त की अधिक सम्भावना होती है, जो ऐसे दुष्ट कर्मों के लिए आवश्यक है। परन्तु ईश्वर का विश्वास होने पर पापाचरण के लिए एकान्त स्थान मिल ही नहीं सकता। एक उर्दू कवि ने इसी भाव को अपनी एक कविता में इस प्रकार प्रकट किया है-

जाहिद[१] शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।
या वह जगह बता कि जहाँ पर खुदा न हो।।

(१- जाहिद : परहेजगार=शुद्धाचारी मनुष्य)

अस्तु, जब तक मनुष्य के हृदय में नास्तिकता न आये तब तक वह पाप नहीं करता। इसलिए ईश्वर के सर्वव्यापकत्व पर विश्वास होने ही से मनुष्य निष्पाप हो सकता है। दूसरी बात प्रेम है। मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक मानने से विवश है कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर की सत्ता-- उसके व्यापकत्व गुण से, स्वीकार करे और जब इस प्रकार प्रत्येक प्राणी में-चाहे वह अछूत हो या और कोई उनसे भी निकृष्ट--ईश्वर का होना मानेगा, तब उससे घृणा किस प्रकार कर सकता है। घृणा का अभाव ही प्रेम का द्वार है।

घृणा भी नास्तिकता ही से उत्पन्न होती हैं। जिससे कोई घृणा करेगा, अवश्य उसमें ईश्वर की सत्ता का अभाव मानेगा। इसी का नाम तो नास्तिकता है। निष्कर्ष यह है कि निष्पापता और प्रेम से मनुष्यों के हृदयों में लचकीलापन (कठोरता का अभाव) आया करता है, और इन दोनों साधनों की प्राप्ति ईश्वर के व्यापकत्व पर विश्वास होने ही से हुआ करती है। उपनिषद् ने इस शिक्षा को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है – ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।।

दूसरा कर्तव्य –

उपनिषद् के संक्षिप्त से तीन शब्दों में दूसरा कर्तव्य वर्णन किया गया है। वे शब्द ये हैं- 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।। अर्थात् उस (ईश्वर) के दिये हुए से भोग करे। उपनिषदों ने प्रत्येक प्रकार के भोग की आज्ञा दी है। मनुष्य विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे, शक्ति प्राप्त करके राज्य प्राप्त करे और उसका उपभोग करे, कृषि-व्यापार तथा अन्य कौशलादि से धन प्राप्त करके उसका इस्तेमाल करे इत्यादि। उपनिषद् इन सब को विहित बतलाती है, परन्तु एक शर्त इन सब के भोग के साथ लगाती है और वह यह है कि मनुष्य इन प्राप्त भोग पदार्थों को ईश्वर का समझकर भोग करे। ऐसे विश्वास से मनुष्य प्रत्येक पदार्थ, राज्य, धनादि को ईश्वर का समझकर उनमें केवल अपना प्रयोगाधिकार समझेगा और ममत्व न जोड़ सकेगा कि 'अमुक पदार्थ मेरा है'। संसार के समस्त दुःखों का मूल ममता है। दुःख प्रायः किसी न किसी वस्तु के पृथक् होने से हुआ करते हैं, परन्तु जब इन्हीं वस्तुओं को स्वयं छोड़ देता है, तब दुःख नहीं अपितु सुख हुआ करता है। एक प्रोफेसर को कालिज में अनेक वस्तुएँ, पुस्तकें, चित्र, कुर्सी, मेज आदि-प्रयोग के लिए मिली हुई हैं। वह उनका कालिज के घण्टों में प्रयोग करता है। प्रयोग-काल (कालिज के घण्टों) के भीतर यदि कोई उससे इन वस्तुओं को लेना चाहता है तो नहीं देता, परन्तु जब कालिज का अन्तिम घण्टा बजा और इन वस्तुओं के प्रयोग का समय खत्म हुआ, तब स्वयं इन वस्तुओं को कालिज में ही छोड़कर तने तनहा (अकेला शरीर लेकर) चल देता है। उस समय यदि कोई कहता है कि उन वस्तुओं में से वह किसी को अपने साथ लेता जाय तो वह उसे अपने ऊपर

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

मांस मनुष्य का भोजन नहीं!

❒विष्णु शर्मा

वास्तव में शाकाहार हर प्राणी से प्रेम करना सिखाता है क्योंकि शाकाहारी व्यक्ति हिंसा नहीं करता और जो हिंसा नहीं करता उससे अन्य जीव जंतु भी प्रेम करते हैं।

इंसान जबसे इस दुनिया में आया है तब से उसके साथ एक चीज और आई है और वह है भूख। भूख ऐसी चीज है जो इंसान को कुछ भी करने के लिए मजबूर कर देती है। कई बार तो भूख का नाम लेकर इंसान वह सब कर जाता है जो उसे किसी भी हाल में नहीं करना चाहिए। उन्हीं न करने योग्य कामों से एक है- मांसभक्षण। मांसाहारी किसी भी मासूम और बेजुबान जानवर को मारकर खा जाते हैं, लेकिन यह नैतिकता की दृष्टि से, मानवता की दृष्टि से और विज्ञान की दृष्टि से बिल्कुल भी ठीक नहीं है। चलिए आइये देखते हैं, कैसे-

अगर संसार के सभी जीवों को देखा जाए तो उनमें मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ और क्रियाशील है। ईश्वर ने जो नेमतें और ताकतें इंसानों को दी हैं वे और किसी जीव-और किसी प्राणी को नहीं दी हैं। इसलिए हम इंसानों की जिम्मेदारी भी सबसे अधिक है। इंसान अपने हुनर और दिमाग का इस्तेमाल करके भी अन्य जीवों से अपनी आजीविका प्राप्त कर सकता है। जैसे गाय, भैंस का दूध बेचकर, भेड़ से ऊन बेचकर, हाथी से महावत बनकर, घोड़े से तांगा आदि चलाकर। इस तरह से वन्य जीवों को मारे बिना भी इनके जरिए भूख का इलाज हो सकता है तो फिर क्यों बेवजह इनकी हत्या का पाप अपने सर लें।

हालांकि इस पर यह सवाल उठाया जाता है कि जो पेड़ पौधे खाए जाते हैं, उनमें भी तो जीवन होता है। अगर उनको खाना पाप नहीं है तो मांस खाना कैसे पाप हुआ? तो इस सवाल का जवाब यह है कि पेड़ पौधे आदि वनस्पति सुषुप्ति अवस्था में यानि एक तरह की गहरी नींद में होते हैं। उन्हें काटने या तोड़ने पर हमारी तरह किसी तरह की पीड़ा नहीं होती। वानस्पतिक खाद्य पदार्थ जाग्रत प्राणियों द्वारा स्वेच्छा से दिये गए दूध आदि की तरह होते हैं। इस तरह वनस्पतियों से प्राप्त भोजन खाना गलत नहीं है। वह मांस नहीं होता। वह उनका स्वाभाविक फल है। वे इससे आगे बढ़ने में सक्षम नहीं है। अगर यदि हम आम-अमरूद जैसे फल हिंसा समझ कर न खावें तो वे सड़ जाएँगे और फिर उनका कोई फायदा भी नहीं रहेगा। इसी तरह अगर हरी-भरी सब्जियों को भी यूं ही छोड़ दिया जाए तो वे भी सूखकर बेकार हो जाएंगी और किसी काम की नहीं रहेंगी। आप सब अक्सर खबरों में सुनते होंगे कि आज इतना टन गेंहू गोदाम में पड़े-पड़े खराब हो गया। लेकिन अन्य मांसवाले जीवों के साथ ऐसा नहीं होता।

पशुओं में प्रजनन क्षमता भी होती है, जिससे वे अपना वंश बढाते हैं। उन्हें काटने, मारने पर रक्त की धार सीधी दिखाई देती है। अपने परिजन की मृत्यु पर पशु भी आंसू बहाते हैं तो फिर उन पर इस तरह का अत्याचार क्यों? दूसरी बात- यदि आप प्रोटीन, विटामिन्स आदि के लिए मांस को सही मानते हो तो यह तर्क भी पूरी तरह से ठीक नहीं, क्योंकि जो प्रोटीन, मिनिरल्स पशुओं में होते हैं वे उनमें प्राकृतिक रूप से नहीं होते। वे सभी तत्त्व पेड़ पौधों से ही प्राप्त करते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे फूड चेन कहा जाता है। इस तरह जब पशु पक्षी भी शाकाहार से जरूरी तत्त्व पा सकते हैं तो हम क्यों नहीं? हम तो उनसे बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं तो फिर हम क्यों मांस का ही रास्ता चुनें?

इस पर तर्क करने वाले यह तर्क देते हैं कि शेर आदि हिंसक जीव भी तो मांस खाते हैं तो हम क्यों न खाएँ? तो इस पर मैं यही कहूंगा कि प्रथम तो मांसाहार उनका प्राकृतिक भोजन है, उनके पास अन्य कोई विकल्प ही नहीं है; और न ही उनका बौद्धिक स्तर इतना ऊँचा है कि वे इंसानों की तरह वृक्ष आदि उगा सकें। दूसरा ये कि वे मांस खाने के लिए मेहनत करते हैं। अपने शिकार से लड़कर उसे प्राप्त करते हैं और वे उसे उसी हालत में खाते हैं जिस हालत में वे उसे प्राप्त करते हैं। वे मांस के साथ साथ हड्डी भी पचा लेने में सक्षम हैं। लेकिन इंसानों के साथ यहां भी उल्टा है।

पहले क्रूरता से उसे मारते हैं और फिर उसे पकाकर भिन्न-भिन्न मसालों का प्रयोग कर उसे तैयार करते हैं जिससे मांस का भयानक रूप ढक जाता है और उसे वे खाने के लायक समझते हैं। वे उसे जैसे का तैसा ग्रहण नहीं

कर सकते। वहीं अगर पेड़ पौधों की बात की जाए तो पेड़-पौधे से मिलने वाले खाद्य पदार्थ हमें जिस अवस्था में मिलते हैं, हम उसी अवस्था में उनका सेवन कर सकते हैं। उन्हें भोजन की तरह पकाकर खाने की भी जरूरत नहीं और वे मांस की अपेक्षा सुपाच्य भी होते हैं।

कुछ लोग यह कहकर मांस भक्षण करते हैं कि यदि हम इन्हें नहीं खाएंगे तो इनकी जनसंख्या बढ़ जाएगी! इस मामले में मैं पूछना चाहूंगा कि हजारों प्रजातियां ऐसी हैं जो विलुप्ति की कगार पर हैं। वह भी तब- जब उन्हें खाया नहीं जाता! बाघ कोई नहीं खाता। फिर भी वे मिट रहे हैं। नीलगाय भी कभी कभार ही दिखाई देती है। धीरे धीरे हाथी भी कम हो रहे हैं। बिना खाये इनकी जनसंख्या नही बढ़ी तो अन्यों की कैसे बढ़ेगी। अगर इनकी जनसंख्या बढ़ भी गयी तो कुदरत उसका रास्ता खुद ब खुद ढूंढ लेगी। मनुष्य को तो लगभग कोई नहीं खाता, फिर भी प्रकृति मनुष्य की जनसंख्या को काबू में रखने का उपाय खोज ही लेती है और जो प्रकृति मनुष्य की संख्या वश में कर सकती है वह पशुओं की संख्या वश में क्यों नहीं कर सकती?

मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। इसका एक कारण और है और वह यह है कि मांसाहार हर काल में एवं परिस्थिति में नहीं किया जा सकता। लेकिन शाकाहार जब चाहे तब किया जा सकता है। जब एक शिशु जन्म लेता है तब वह दूध ही पीता है, बहुत से त्योहारों में मांसाहार छोड़ना ही पड़ता है और मांसाहार हमारे लिए हर जगह उपलब्ध हो जाए ऐसा भी नहीं है। किंतु शाकाहार व्यंजन हर जगह मिल ही जाता है। इतिहास इस विषय में प्रमाण है। भगवान राम को जंगलों में भी कंद-मूल-फल मिल जाते हैं। मांसाहार का विकल्प होने पर भी वे शबरी के बेर ही खाते हैं।

पांडव बारह वर्ष जंगलों में बिताते हैं लेकिन एक भी जीव हत्या नहीं करते। महाराणा प्रताप जंगलों में भटकते-भटकते घास की रोटी खाते हैं, लेकिन पेट के लिए किसी की जान नहीं लेते। इस आधुनिक युग में भी ऐसी ऐसी महान विभूतियां हुई हैं जिन्होंने शाकाहारी रहते हुए भी मांसाहारियों को बदल दिया। उन्हें में से एक थे महर्षि रमण। उन्होंने एक बार किसी सिंह के पंजे से कांटे को निकालकर साफ किया, जिससे वह शेर भी उनका भक्त हो गया। इसके बाद वह हर रोज उनके आश्रम आता और उनके पैर चाटकर चला जाता और इस दौरान वह किसी को हानि नहीं पहुंचाता था।

इसी तरह सन् १९३७ की घटना है- किसी साधु ने एक शेर के बच्चे को पकड़कर केवल दूध, साग आदि से उसका लालन पालन किया। जिससे वह शेर पूरी तरह अहिंसक हो गया। जहाँ जहाँ वह साधु जाता वहां वहां वह भी जाता पर इस दौरान उस शेर ने किसी को भी हानि नहीं पहुंचाई। इसी तरह का एक वाकया अमेरिका में भी हुआ। सन् १९४६ से १९५५ की घटना है। अमेरिका के एक चिड़ियाघर में एक शेरनी ने एक मादा शेर को जन्म दिया जिसकी एक टांग खराब थी। उस शावक को जॉर्ज नाम के व्यक्ति को सौंप दिया, जो कि स्वभाव से ही जानवरों का प्रेमी था। उसने उस शेरनी के बच्चे को ठीक करने के लिए नौ साल तक गाय का दूध पिलाया जिससे उसकी टांग अच्छी हो गई। तब जॉर्ज ने सोचा इसे मांस वगैरह भी देना चाहिए, लेकिन उसने मांस की तरफ मुंह उठाकर देखा भी नहीं। मांस देखते ही वह बेचैन हो जाती थी और बड़े होने पर भी उसका यह स्वभाव नहीं बदला।

वह हिंसक प्राणी होकर भी सबसे प्यार करती थी। यहां तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी उसकी पीठ पर बिना डर के घूमते थे। अपने इस स्वभाव से वह इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि उसकी खबरें अमेरिका के अखबारों में पहले ही पेज पर छपने लगी। चिड़ियाघर में भी वह हमेशा खुली ही रहती थी। यह उसके सात्विक आहार का प्रभाव था जिसने उसे भी सात्विक बना दिया था। कहावत भी है कि जैसा खाय अन्न वैसा होए मन।

इन हिंसक पशुओं के बारे में जानकर मांसाहार को सही ठहराने वाले लोगों को सोचना चाहिए कि अगर शाकाहार अथवा शाकाहारी लोग इनके जीवन में इतना बदलाव ला सकते हैं तो आपका जीवन शाकाहार से कितना बदल जायेगा और जब शेर जैसे खूंखार जानवर बिना मांस के रह सकते हैं जो कि उनका प्राकृतिक भोजन है तो मनुष्य क्यों नहीं रह सकता?

वास्तव में शाकाहार हर प्राणी से प्रेम करना सिखाता है क्योंकि शाकाहारी व्यक्ति हिंसा नहीं करता और जो हिंसा नहीं करता उससे अन्य जीव जंतु भी प्रेम करते हैं। महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लिखते हैं-

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर उसके समीप रहने वाले अन्य प्राणी भी वैर त्याग देते हैं। यही कारण है कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनि जंगलों में आवास बनाकर शांति से रहते थे। इसलिए मांसाहार छोड़िए, पशु-पक्षियों से प्रेम कीजिये। बदले में आपको उनसे प्रेम ही मिलेगा। अगर मेरे इस लेख को पढ़ कर किसी एक व्यक्ति ने भी मांसाहार त्याग दिया तो मैं समझूंगा कि मेरी मेहनत सफल हुई।

जानते हो!

❑आस्था

❑नॉर्वे में मई से जुलाई तक सूर्य अस्त नहीं होता, इसलिए इसे लैंड ऑफ मिडनाइट सन भी कहा जाता है।

❑विश्व की आधी से ज्यादा जनसंख्या चावल खाती है।

❑२८ ग्राम शहद एकत्र करने के लिए एक शहद की मक्खी को करीबन १३० किलोमीटर तक उड़ना पड़ता है।

❑जानवरों में सबसे तेज रफ्तार से दौड़ने वाला जानवर चीता है, जो चालीस किलोमीटर प्रति घंटा की गति से दौड़ सकता है।

❍उस बस का नाम बताओ जिसने समुद्र पार किया।

❍वह क्या है जब वह प्रयोग किया जाता है तो भरा होता है, जब प्रयोग नहीं होता है तो खाली होता है।

❍बिना पानी की नदियाँ कहाँ हैं?

कौन सी सिटी बहुत खतरनाक है?

❍वह क्या चीज है जो तुम्हारी है, लेकिन उसका प्रयोग दूसरे करते हैं?

कोलम्बस, जूता, मानचित्र में, इलैक्ट्रिसिटी (बिजली) तुम्हारा नाम

☺☺☺हास्यम्☺☺☺

☺दो शिकारियों के सामने एक शेर आ गया, उन पर हमला करने की बजाय शेर भाग खड़ा हुआ। एक शिकारी बड़ी मुश्किल से बोला-तुम आगे जाकर देखो कि शेर गया कहाँ है? मैं पीछे जाकर देखता हूँ कि शेर आया कहाँ से था।

☺पत्नी (पति से) जब तुम कार मोड़ते हो तो मुझे बड़ा डर लगता है। कहीं एक्सीडेंट न हो जाए।

पति : इसमें डरने की क्या बात है? तुम भी मेरी तरह आँखें बंद कर लिया करो।

☺नौकर मालिक से साहब, आप के यहाँ काम करते हुए मेरे बाल सफेद हो गए लेकिन आपने मेरी तनखाह नहीं बढ़ाई?

मालिक : ठीक है, बढ़ा देंगे, अभी यह दस रुपये का नोट लो और बाजार जाकर अपने बाल काले करवा आओ।

☺पहला कैदी-''तुम जेल में कैसे आ गए ?''

दूसरा-''रस्सी चुराने के अपराध में''

पहला - (आश्चर्य से) ''ऐसा कैसे हो सकता है ?''

दूसरा - ''ऐसा ही हुआ है। दर असल रस्सी के दूसरे सिरे पर भैंस बँधी थी।''

☺एक मित्र : 'क्या यह सही है कि हर व्यक्ति को एक दिन मरना है?'

दूसरा : ''हाँ, यह एकदम सच है।''

पहला : मैं सोचता हूँ, जो आदमी सबसे आखिर में मरेगा, उसे शमशान घाट कौन ले जाएगा ?

☺पति (पत्नी से) : आज का अखबार कहाँ है?

पत्नी-पता नहीं मैं तो कल से ढूँढ रही हूँ।

प्रहेलिका:

❑सुमेधा

☹टिमटिम करते कितने प्यारे, चंदा मामा के रखवारे

☹टिकटिक करती चलती जाऊँ, सबको सही समय बतलाऊँ
देर होने से तुम्हें बचाऊँ, समय का पाबन्द बनाऊँ।।

☹हवा का एक खिलौना, जब हाथ छूट जाए
आसमान में उड़ता जाए, बच्चा हाथ देखता रह जाए

☹आर चलूँ पार चलूँ, सब्जियों को फाड़ चलूँ

☹फिरती कली-कली रंग-बिरंगी प्यारी-प्यारी
हर फुलवारी देख मुझे बच्चे करते पकड़ने की तैयारी।।

☹ऊपर जाऊँ, नीचे आऊँ, सावन में मैं धूम मचाऊँ।।

☹ऊपर से हरा, अन्दर से लाल।
मीठा रस भरा, मोटी खाल।।

☹धर्म की खातिर, बेटे दिए चार।
दो युद्ध लड़कर मरे, दो चुने दीवार।

☹एक अनोखा पहरेदार।
लटका रहता घर के द्वार।

☹दोनों कान पकड़कर, नाक पर होता सवार।
देखने में मदद करूँ, नाम बतलाओ यार

तारे, घड़ी, पतंग, चाकू तितली, झूला, तरबूज, गुरुगोविन्दसिंह, ताला, ऐनक, मोमबत्ती

विचार-कणिका:

❑प्रतिभा

♠दूसरों के दु:ख में उनका साथ दें जिससे दु:ख बंटकर कम हो जाए। दूसरों की खुशी में खुश रहें, ताकि खुशी चौगुनी हो जाए।

♠पहले दु:खों को चुनो, सुख प्राप्त करने के लिए। हम चुनते हैं सुख, दु:खों को प्राप्त करने के लिए।

♠सत्य जीवन का लक्ष्य है, संयम जीवन की पद्धति और सेवा जीवन का कार्य। विचार करो और जीवन को सार्थक बनाओ।

♠ऐसा परामर्श मत दो जो अति सुन्दर हो, अपितु ऐसा परामर्श दो, जो कल्याणकारी हो।

♠जो पाण्डित्य के द्वारा प्रभु की व्याख्या करने का यत्न करता है, वह ठीक उस व्यक्ति के समान है, जो स्वयं कभी काशी गया नहीं, किन्तु नक्शे के द्वारा काशी का वर्णन करता है।

प्रेरक कथाएँ : साहसिक कथा

महाराणा की रोटी

❒सत्यानन्द आर्य

महाराणा प्रताप मुगलों से युद्ध के दौरान जंगलों और पहाड़ियों में रह रहे थे, परन्तु देश को स्वतंत्र करवाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। इसी पहाड़ी इलाके में एक छोटा सा गांव था। इस गांव में लगभग दो सौ झोंपड़ियां थीं। एक दिन सायंकाल का समय था, आकाश में बादल छाये हुए थे। सारा पहाड़ी क्षेत्र अंधकार के आँचल में सिमटा हुआ था। एक झोंपड़ी में एक बालक माँ को रोटी सेंकते देखकर ओठों पर जीभ फेर रहा था। बारह वर्ष का बालक भूख से व्याकुल था। पितृविहीन बालक को तीन दिन के बाद रोटी नसीब हो रही थी। वह अधीर हुआ था। बालक का नाम था दुद्धा। अचानक उसके दिमाग में एक विचार कौंधा और उसने पूछा-''माँ, महाराणा (प्रताप) कई दिनों से ऊपर पहाड़ी पर हैं, चारों तरफ से शत्रुओं ने उन्हें घेर रखा है। वे भोजन कैसे करते होंगे?'

बालक के उद्‌गार सुन माँ आह्लाद और चिंता भरी वाणी में बोली-''बेटा, जाने कैसी हालत होगी उनकी। कई दिनों से उनको भोजन तो क्या अन्न का एक दाना भी नसीब न हुआ होगा।''

'माँ, उनके छोटे-छोटे बच्चे भी हैं न?'

'हाँ।'

'वे भी भूखे होंगे? मेरी तरह।'

माँ ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

बालक किसी गहन सोच में डूब गया। पल भर पहले जो भूख उसे सताये थी, अब लुप्त हो गई थी।

''माँ! मैं महाराणा और उनके बच्चों को रोटी देने पहाड़ी पर जाऊंगा।''

माँ के चेहरे पर गौरव की आभा झलक उठी। किन्तु अगले ही पल उसका मातृत्व पिघल उठा। एक ही सहारा था उसका---इकलौती संतान और वह भी मौत के मुख में जाने को आतुर। किन्तु उसका विचार महान था। देश की रक्षार्थ निवीड़ वनों में मौत से संघर्ष कर स्वातंत्र्य देवी की आराधना कर रहे महाराणा प्रताप और उनके बच्चों का भूख से आकुल चेहरा माँ की आंखों में घूम गया। वह बालक के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए बोलीं-''किन्तु चारों ओर तो शत्रुओं का पहरा है, रोटी देने जाओगे कैसे?''

'माँ। इस समय चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है। ऐसे में शत्रु कुछ भी नहीं देख सकेगा। मैं पहाड़ी रास्ता जानता हूँ, माँ। मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी।

माँ ने उस अदम्य साहसी बालक को अपने हृदय से लगा लिया और आंसुओं की अवरिल धारा उसके नेत्रों से बह निकली। यह मौन स्वीकृति थी मां की, जो एकमात्र संतान को देश पर न्यौछावर होने के लिए प्रेरित कर रही थीं।

रोटियों की पोटली बांधकर जैसे ही बालक झोंपड़ी से बाहर निकला, जोरदार बादल गरजे, बिजली चमकी और मूसलाधार बारिश होने लगी। परन्तु वह अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए पहाड़ी के पथरीले रास्तों पर नंगे पाँव शत्रु के जाल से बचता हुआ आगे बढ़ने लगा। पैर छिल गये थे, देह पर जगह-जगह पर घाव हो गये थे, परन्तु उसको इसकी परवाह कहाँ! तभी अचानक जोर से बिजली चमकी। मुगल सैनिकों ने एक परछाई को जाते हुए देखा। एक मुगल सैनिक ने अन्दाज से अपनी कटार निकाल कर फेंक दी। कटार बालक की पीठ पर धंस गई। बड़ी पीड़ा के बाद भी उसके मुंह से कोई चीख नहीं निकली। एक क्षण भी विलम्ब किये बिना उसने नीचे की तरफ सिपाही की ओर एक बड़ा पत्थर लुढ़का दिया। अगले ही क्षण एक चीत्कार उस वातावरण से उठकर अंधेरे में समा गई। वह छटपटाता गिरता-पड़ता अपने गंतव्य पर जा पहुँचा। द्वार पर दो थपकियाँ देकर गिर पड़ा। महाराणा प्रताप द्वार खोलकर सन्नद्ध अवस्था में बाहर आये। मशाल की धीमी रोशनी में उन्होंने देखा कि एक बालक घायल अवस्था में पड़ा है। हाथ में रोटियों की एक पोटली है। चेहरे पर सफलता तथा संतोष की आभा वेदना के बाद भी खिली है। महाराणा को समझते देर न लगी। बालक ध्येय की वेदी पर सो चुका है। बालक के साहस और आत्म बलिदान के समक्ष आदर व श्रद्धा से महाराणा का शीश झुक गया।

भगत सिंह के दादाजी

भगत सिंह के परिवार के सम्बन्ध में एक रोचक संस्मरण पठनीय है। अमर क्रान्तिकारी भगत सिंह के दादा थे श्री अर्जुन सिंह। एक मेले में गोदना गोदने वाला, लोगों की देह पर मशीन से तरह-तरह की तस्वीरें गोद रहा था। यह देखकर अर्जुन सिंह के अन्दर भी कुछ गुदवाने की प्रबल आकांक्षा पैदा हुई। गोदने वाला जब दूसरों की तरह उनके हाथ पर चित्र या नाम गोदने को तैयार हुआ तो, अर्जुन सिंह ने झटके से अपना हाथ खींचकर कहा 'मेरी छाती पर महर्षि दयानन्द की वह आकृति जो उनकी ध्यानावस्था और अवधूत स्थिति की है, गोद दो।

वह कारीगर आश्चर्य से उस युवक का मुंह देखने लगा।

युवक बोला-'गुदवाना वहाँ चाहिये जो शरीर का सबसे पवित्र स्थान हो और जहाँ गुदी आकृति सदा विद्यमान रहे। भला, छाती से बढ़कर शरीर का उत्तम और पवित्र स्थान कहाँ है? फिर उसने कारीगर को बताया कि दयानन्द कौन थे? कितने महान थे और उनके कितने उपकार हैं?

'छाती पर गुदी इस आकृति से मैं इस महात्मा का सदा पुण्य स्मरण करता रहूंगा।'

❐श्री लक्ष्मणसिंह बेमोल

ओम् नाम का सुमिरन करले करदे भव से पार तुझे,
कह लिया कितनी बार तुझे।। टेक।।

जिस नगरी में वास तेरा ये ठग चोरों की बस्ती है।
लुट जाते हैं बड़े-बड़े यहाँ फिर तेरी क्या हस्ती है।
जिसको अपना समझ रहा ये धोखा दे संसार तुझे।।1।।

हाथ पकड़ कर गली-2 जो मित्र तुम्हारे डोल रहे।
कोयल जैसी मीठी वाणी कदम-2 पर बोल रहे ।।
बनी के साथी बिगड़ी में ना गले लगायें यार तुझे।।2।।

दौलत का दीवाना बनकर धर्म कर्म को भूल गया ।
यज्ञ हवन तप दान किया ना नींद नशे में टूल गया ।
ईश्वर को भी नहीं जानता ऐसा चढ़ा खुमार तुझे।।3।।

तुझसे पहले गये बहुत से कितना धन ले साथ गये।
'लक्ष्मणसिंह बेमोल' कहे वो सारे खाली हाथ गये।
तू भी खाली हाथ चलेगा देखेंगे नर नार तुझे।।4।।

❐श्री महेन्द्र आर्य

कैसे मिला है यह तन तुम को कभी ना किया विचार,
प्रभु भक्ति बिन जीवन है बेकार।।

अन गिन शुभ कामों से मानव देह मिली
जड़ क्यों काट रहा जीवन की कली खिली ।
अमूल्य जीवन मिला समझले अब भी इसका सार।।
प्रभु भक्ति बिन जीवन है बेकार।।

कितने आये यहाँ यात्री चले गये ।
काल रूपी चक्की के अन्दर दले गये ।।
इच्छा तज कर फल पाने की कर्म करो हर बार।।
प्रभु भक्ति बिन जीवन है बेकार।।

सोचना था जो सोच लिया अब चल निकल।
नीचे गहरी खाई है मत तू फिसल।।
प्रभु का उर विश्वास अटल ले मत हिम्मत को हार।।
प्रभु भक्ति बिन जीवन है बेकार।।

लज्जा भय शंका जिसमें वह कर्म तुम्हें।
कभी नहीं करने चाहियें कहे धर्म तुम्हें।।
शोभाराम कहे 'महेन्द्र आर्य' कर जीवन उद्धार।।
प्रभु भक्ति बिन जीवन है बेकार।।

❐श्री सत्यपाल पथिक

तर्ज - अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे क्योंकर रिझाऊँ मैं ।
कहीं पर जीत होती है कहीं पर हार होती है ।
यही है जिन्दगी प्यारे जो दिन दो चार होती है ।

जो पेड़ों को लगाते हैं सभी तो फल नहीं खाते,
यहाँ प्रारब्ध भी कोई चीज आखिरकार होती है।

किसी भी काम में जब तक न हो मरजी विधाता की,
बड़ी कोशिश करे कोई मगर बेकार होती है।।

कभी खिलवाड़ फूलों से कभी आकाश से बातें,
कभी तूफान में नैया पड़ी मँझधार होती है।।

यह बचपन ही सहारा है जवानी और बुढ़ापे का,
अजी यह नींव है जिस पर खड़ी दीवार होती है।।

यह जीवन एक नदिया है तो सुख दुःख दो किनारे हैं,
ये दोनों साथ रहते हैं जहाँ जलधार होती है।।

यह दौलत नाव ही समझो जो आती और जाती है,
कभी इस पार होती है कभी उस पार होती है।।

'पथिक' मंजिल पे सब पहुँचें कोई आगे कोई पीछे,
कि हर इनसान की जग में अलग रफतार होती है।।6।।

❐श्री पं० नरदेव जी

(तर्ज- उड़ें जब-जब जुल्फें तेरी)
कर ओम् भजन तू प्राणी। यह थोड़ी सी जिन्दगानी।
आखिर यह दुनिया फानी, जरा कर ध्यान लियो,
ओ बन्दे ----!

पहले शुभ कर्म कमाया। तब मानव चोला पाया।
इस जग के अन्दर आया, नहीं कुछ ध्यान कियो--
ओ बन्दे ----!

बालक पन खेल गंवाया। जवानी में अति इतराया।
धन का भी ढेर लगाया, बहुत अभिमान कियो।
ओ बन्दे ----!

आई अब वृद्ध अवस्था, बिगड़ी है सभी व्यवस्था।
पूतों ने छीना बस्ता, नहीं कुछ मान कियो।।
ओ बन्दे ----!

अब तो कुछ धर्म कमाले, 'नरदेव' ईश गुण गाले।
वेदों की शिक्षा पाले, श्रेष्ठ विधान दियो,
ओ बन्दे ----!

अवध्या गाय (पृष्ठ २३ का शेष)

है। बस, ऐसी कृपा कर कि तेरे द्वारा मैं सुंदर का ही उच्चारण करूं, असुंदर का नहीं।

पुनः मंत्र की व्यापकता देखते हुए चलते हैं। जब हम आधिदैविक में आते हैं तो इसी गौ की प्रतिनिधि भूमि होती है और आधिभौतिक में यही राष्ट्र की देवी होती है। पशु जगत् में यही चार पैरों वाली- अपने स्तनों में अमृत की धाराएं भरे हुए गौमाता है।

अब आपकी समझ में सरलतापूर्वक आ रहा होगा कि चाहे किसी भी रूप में हो, किसी भी अवस्था में क्यों न हो- गौ अवध्या है। अमृत का भंडार है। यह रत्नगर्भा भूमि माता और इस पर उपस्थित जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ; इनका जब-जब भी अनावश्यक रूप से दोहन किया गया- कहना चाहिए कि उनकी हत्या की गई, मानव ने महान कष्ट उठाए हैं। अनेक प्रकार की बीमारियों से त्रस्त होकर संपूर्ण मानव जाति कराह उठी और बड़ी कठिनाई से उससे पार पाया जा सका।

आज भी कोरोना जैसा भयंकर विषाणु अपना विकराल रूप लेकर आया है और पूरा संसार इसके सामने घुटने टेक चुका है। राष्ट्र की देवी अर्थात् राष्ट्र की कल्याणकारी भावना, बलिदान होने की भावना, रक्षा के लिए सर्वस्व अर्पित करने की भावना, जन-जन तक सुख-सुविधाएं पहुंचाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान करने की भावना, निरंतर उन्नति के शिखर पर ले जाने की भावना, सुव्यवस्था रखते हुए अपने नागरिकों को सभ्य, शिक्षित, चरित्रवान्, देशभक्त, ध ार्मिक और न्यायप्रिय बनाने की भावना ही तो राष्ट्र की देवी है। इस गाय का भी जब-जब वध हुआ है, तब तब यह ध ारा न जाने कितने लोगों के रक्त से नहा उठी है। सन १९४७ में जब राष्ट्रीय भावनाओं की बलि दी गई और थोड़े से लोगों की जिद और स्वार्थ से उत्पन्न इच्छा पृथक देश की मांग के रूप में उभरी और दुर्बल, दब्बू और कायर तथा अदूरदर्शी नेताओं ने राष्ट्र देवी की हत्या की तो कई लाख लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी और रक्त भयंकर तांडव नृत्य जनसंहार का देखना पड़ा।

और यह दूध देने वाली गाय! इसका तो कहना ही क्या? यह तो बेचारी कितनी भोली, निरीह और सरल है कि यदि कोई इसे मारना चाहे तो भी इसकी आंखों में देखकर ही करुणा बरस पड़े! परंतु दुष्ट और कुकर्मी लोगों ने इसे भी न छोड़ा। इसकी भी निर्मम हत्या कर डाली। यह हो सकता है कि किसी को वाणी का रहस्य समझ में न आवे। यह भी हो सकता है कि स्वार्थ और द्वेषाग्नि के कारण भूमि माता का भी ध्यान न आए। यह भी हो सकता है कि पद लिप्सा के आगे राष्ट्रधर्म भी गौण हो जाए, परंतु साक्षात्-- सामने-- प्रत्यक्ष खड़ी हुई- दूध, घी, दही, मक्खन, पनीर, लस्सी आदि से अमृत की वर्षा करती हुई गाय को केवल मांस के लिए मार दिया जाना तो अत्यंत क्रूरतापूर्ण कृत्य है। इसके साथ-साथ यह अत्यंत अधम कोटि की मूर्खता भी है। यह भी सभी के लिए अवध्य है। आज यह बेचारी गाय भी एक-दो नहीं अपितु लाखों की संख्या में काटी जा रही है। भारत जैसे धार्मिक कहे जाने वाले देश में ही अनेक स्थानों पर गौ-वधशालाएँ चल रही हैं। आश्चर्य है कि जिस देश के लोग गोपाल श्री कृष्ण की पूजा करते हैं, उस देश में गाय का वध बड़े स्तर पर किया जाता है। निश्चय ही मति भ्रष्ट हो चुकी है। विनाश का मार्ग चुन लिया गया है।

उक्त वर्णन में हमने जो कुछ भी दर्शाने का प्रयास किया वह अमृत के केंद्रों की बात कहता है। स्वयं वेद मंत्र पुकार पुकार कर क्या रहा है। यह सभी अमृतस्य नाभिः हैं। ऐसा कौन मूर्ख और अभागा व्यक्ति होगा जो अमृत की नाभि अर्थात् केंद्र को नष्ट करना चाहेगा! यदि ये केंद्र नष्ट हो रहे हैं या किए जा रहे हैं तो यह स्पष्ट है कि वे लोग महामूर्ख और बिल्कुल अंधे ही हैं, जिन्हें इसका पता ही नहीं है कि वास्तव में अमृत है क्या?

प्रत्येक चेतना वाले पुरुष (चिकितुषे जन) का यह प्रथम कर्तव्य बनता है कि वह जहां स्वयं इस बात की गंभीरता को समझे, वहां अन्य को भी समझाए। हमें जिस वस्तु के महत्व का पता होता है, उसकी सुरक्षा पूर्ण प्रयत्न और दक्षता से करते हैं। यहां तक कि उसके लिए अपने प्राणों का भी त्याग करने को तत्पर रहते हैं। तो फिर इतनी मूल्यवान इस गाय की रक्षा क्यों नहीं कर रहे। ३३ देवताओं में से ३१ के साथ तो इनका प्रत्यक्ष संबंध है ही, अन्य दो= इन्द्र व प्रजापति के साथ भी है।

प्रजापति यहां पर 'यज्ञ' को कहा गया है। यह तो बिना गाय के कभी हो ही नहीं सकता। जब घृत ही नहीं है तो यज्ञ होगा कहां से? अतः उसके मूल में भी गाय ही विद्यमान है। अब शेष रह जाता है इंद्र अर्थात् बिजली। उसके ऐश्वर्य का भोग करने के लिए भी शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता है। वह भी गौ की रक्षा के बिना नहीं आ सकेगी। इस प्रकार ३३ देवताओं के साथ इस गाय का संबंध ा हो जाता है। आश्चर्य है कि मनुष्य ३३ देवताओं के स्थान पर ३३ करोड़ देवी देवताओं को तो मान रहा है, उनकी मूर्तियों को तो भोग लगा रहा है और उनकी प्रत्यक्ष संबंधिनि की हत्या कर रहा है। ❑❑❑

शास्त्रार्थ (पृष्ठ २६ का शेष)

बोझ समझता है। प्रोफेसर ने जब इन वस्तुओं के सम्बन्ध में अपना केवल प्रयोगाधिकार समझा, तब उसे इन वस्तुओं के छोड़ने में कुछ भी दुःख नहीं हुआ, परन्तु यदि वह इन वस्तुओं में ममता जोड़ लेता है कि 'वस्तुएँ मेरी हैं' तब उसे इन वस्तुओं को छोड़ने में कष्ट अनुभव करना पड़ता है। अस्तु, मनुष्य में जब तक ममता का प्राबल्य रहता है, तब तक वह किसी वस्तु को छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु जब उन वस्तुओं में वह अपना केवल प्रयोगाधिकार समझता है, तब प्रयोग-समय समाप्त होने पर स्वयं उन्हें छोड़ दिया करता है।

वस्तुओं के छीनने वाले चोर-डाकू, राजे-महाराजे हुआ ही करते हैं, परन्तु एक बड़ी प्रबल शक्ति है जो गिन-गिन कर एक-एक वस्तु प्राणियों से ले लिया करती है और कुछ भी नहीं छोड़ा करती। उस शक्ति का नाम है- मृत्यु। मृत्यु आकर पदार्थों को छीनती है, परन्तु ममता के वशीभूत प्राणी उन्हें देना नहीं चाहता। इसी कलह का नाम मृत्युसंवेदना (मरने का दुःख) है। मृत्यु वास्तव में दुःखप्रद नहीं सुखप्रद है, परन्तु मरने के समय ये दुःख मनुष्यों को ममता के वश में होकर उठाने पड़ते हैं। जो मनुष्य सांसारिक भोग्य पदार्थों में अपना प्रयोगाधिकार समझता है वह इन्हें प्रयोग का समय (जीवन-काल=आयु) समाप्त होने पर छोड़ देता है और फिर उसके पास कुछ रहता ही नहीं, जिसे मृत्यु आकर अपहरण करे। इसलिए उसके लिए मृत्यु का समय दुःख का समय नहीं, अपितु सुख और शान्ति के साथ संसार छोड़ने का समय होता है, जिसमें उसे आशा और आशा ही नहीं, अपितु विश्वास होता है कि वह यह यात्रा चिरकालीन सुख और शान्ति की प्राप्ति करने के लिए कर रहा है। और ऐसे व्यक्ति मृत्यु से डरते नहीं, अपितु मृत्यु का स्वागत किया करते हैं और प्रसन्नता के साथ हँसते-हँसते संसार को छोड़ दिया करते हैं।

मृत्यु के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त दुनिया के सामने रखा जाता है कि वह दुःखप्रद नहीं, अपितु सुखप्रद है, तब मनुष्य उसे स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं। एक व्यक्ति कुष्ठ रोग से पीड़ित है और उसके शरीर से रक्त और मवाद निकला करता है, जिससे प्रत्येक क्षण उसे व्यथित रहना पड़ता है। इस पर तुर्रा यह कि वह जेलखाने में भी कैद है। किसी प्रकार की स्वतन्त्रता न होने से उसका जीवन दुःख और केवल दुःखमय बन रहा है। परन्तु ऐसे व्यक्ति से जब यह पूछते हैं कि क्या भाई तुम इन सारी विपत्तियों से बचने के लिए मरना चाहते हो? तो मरने का नाम सुनकर वह भी कानों पर हाथ धरता है। क्रियात्मक जगत् में मृत्यु का इतना भय मनुष्यों के हृदय में बैठा हुआ है, फिर वे मृत्यु को किस प्रकार सुखप्रद कह सकते हैं। यही कारण है, जिससे मनुष्य इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में हिचर-मिचर (आनाकानी) करते हैं। परन्तु जैसा कि कहा गया है, यह दुःख मनुष्यों को तब होता है जब वे ममता से नाता जोड़ लेते हैं।

एक अत्यन्त रूपवान् पुरुष अपना मुँह जब हँसाने वाले शीशे (Ludicrous=Laughing glass) में देखता है, तो उसका अच्छा मुँह भी बहुत भोंडा और हँसने के योग्य दिखाई देता है तो इसमें मुँह का क्या दोष? मुँह तो अच्छा खासा है। इसमें दोष असल में उस हास्यकारी शीशे ही का है। इसी प्रकार मृत्यु तो दुःखप्रद नहीं अपितु सुखप्रद ही है। परन्तु जब मनुष्य ममता के आयने को सामने रखकर उसमें उसे (मृत्यु को) देखता है, तब वह डरावनी और भयावनी प्रतीत होने लगती है। इससे स्पष्ट होता है कि दोष मृत्यु का नहीं, किन्तु उसी ममतारूपी हास्यकारी शीशे का है। यदि इस शीशे को हटा कर देखें तो फिर मृत्यु की प्यारी और असली सूरत दिखाई देने लगती है।

मृत्यु के प्रिय होने के सम्बन्ध में डॉक्टर ह्यूग लौंसडेल हैंड्स (Dr. Hugh Lonsdale Hands) ने आत्मघात के द्वारा परीक्षण करके मृत्यु के प्रिय होने की पुष्टि की है। उसने अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा है -

I have taken half an ounce of Aconite, an ounce of Chloral Hydrate. Both are nice except the tingling, waiting-- feeling very happy--first time. I ever felt without worries as if free- +++ Japs are right--death is lovely- I feel fine no pain.

इसका भाव यह है कि विष खाने के बाद उसने लिखा- 'मृत्यु प्रिय है, मैं अपने को अच्छा समझ रहा हूँ। मुझे कोई तकलीफ नहीं है।'

सारांश यह है कि इस दूसरे कर्तव्य का पालन करने से मनुष्य मृत्यु के भय से स्वतन्त्र होता है। किन्हीं-किन्हीं पुरुषों को यह भ्रम है, या हो जाता है कि यदि मनुष्य सांसारिक पदार्थों-राज्यादि में ममता न जोड़े तो फिर उनकी रक्षा न कर सकेगा। परन्तु यह उनकी भूल है। मनुष्य उन वस्तुओं की भी वैसी ही रक्षा-उपर्युक्त प्रोफेसर की तरह किया करता है, जो उसे प्रयोग के लिए मिली हों, जैसी उनकी करता है जिनमें उसने मेरेपन का नाता जोड़ा हुआ है। इसलिए लोकदृष्टि से भी यह नियम वैसा ही उपयोगी है जैसा परलोक दृष्टि से। मनुष्य मृत्यु के भय से स्वतन्त्र होकर संसार में कौन-सा बड़े से बड़ा काम है, जिसे नहीं कर सकता। (आगामी अंकों में सतत)

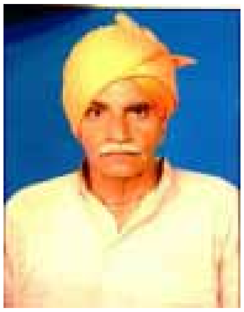

fcUnqfcUnqfopkj

❒**भलेराम आर्य,** सांघी वाले 9416972879

◆जीवन कर्म का ही नाम है जो कर्म नहीं करता उसका अस्तित्त्व तो है किन्तु वह जीवित नहीं होता। –हिलार्ड

◆कठिनाईयों में सिद्धान्तों की परीक्षा होती है।

◆फैसला जल्दी करो मगर बहुत सोचने के बाद–

◆विपत्तियों के बिना मनुष्य नहीं जान सकता कि वह ईमानदार है या नहीं।

◆आलस्य भी एक प्रकार की हिंसा है। –महात्मा गांधी

◆अपनी अज्ञानता का आभास हो जाना, ज्ञान का प्रथम सोपान है।

◆हर काम खुशी से करोगे तो कोई काम बोझ नहीं लगेगा।

◆व्यक्ति को ऐसे मित्र का परित्याग कर देना चाहिए, जो उसकी पीठ पीछे उसके कार्य को हानि पहुंचाता है, बुरा भला कहता है और सामने मीठी मीठी बातें करता है।

◆प्रतिभाशाली का पाप समाज का बड़ा अहित करता है।

◆प्यार और सहकार से भरा–पूरा परिवार ही धरती का स्वर्ग होता है।

◆फूलों की सुगन्ध हवा के प्रतिकूल नहीं फैलती, पर सद्‌गुणों की कीर्ति दसों दिशाओं में फैलती है।

◆जो ज्ञान मनुष्य के अच्छे संस्कारों को जाग्रत करे और उत्तम वृत्तियों को बढ़ाकर ऊंचा उठा दे, वही विद्या है।

◆जो असत्य और अनौचित्य को इसलिए स्वीकार करता है कि प्रतिरोध करने पर उसे झंझट में फंसना पड़ेगा, वह वस्तुतः नास्तिक है।

पाठकों से निवेदन

१ एक स्थान पर १० या अधिक सदस्य होने पर किसी एक सदस्य के पास पैकेट रजिस्टर्ड डाक से भेजते हैं। इसका रजिस्टरी खर्च हम वहन करते हैं। रजिस्टरी और पैकिंग सहित यह लगभग ३००/–(एक वर्ष) होता है। एक सदस्य का रजिस्टरी खर्च वहन करना हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आपको अपनी प्रति साधारण डाक से नहीं मिल रही है और आप अपनी एक प्रति रजिस्टरी से मंगाना चाहते हैं तो अपने सदस्यता शुल्क में एक वर्ष के लिए अतिरिक्त ३००/– जोड़कर भेजें। हम चाहेंगे कि आप दस वर्षीय सदस्यता शुल्क भेजने की बजाय अपने आसपास के कम से कम दस सदस्यों का वार्षिक शुल्क भेजें। आपको एक वर्ष तक हर मास १० प्रतियाँ रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त होंगीं। यह सहयोग कुछ पाठक कर भी रहे हैं।

२ आप अपनी प्रति ई मेल से भी पीडीएफ में मंगा सकते हैं। उसके लिए कोई अतिरिक्त शुल्क देय नहीं है।

कोरोना की विभीषिका के संदर्भ में हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे संगठित और एकजुट होकर सरकार और प्रशासन के निर्देशों का सख्ती से पालन करें। घर में प्रतिदिन यज्ञ करें। बच्चों को संध्या सिखाएँ। किसी आर्ष ग्रंथ का और नैतिक शिक्षा की पुस्तकों का स्वाध्याय बच्चों के साथ अवश्य करें।

कोरोना के लॉकडाऊन के मध्य हम पाठकों को इण्टरनेट के द्वारा ही शांतिधर्मी भेज पायेंगे। आप अपने ईमेल या व्हाट्स एप्प पर मंगा सकते हैं।

साथ ही इस अवधि का शुल्क भी पाठकों से नहीं लिया जायेगा।

ईश्वर आपकी रक्षा करे। आप स्वयं अपनी रक्षा करने के लिये निर्दिष्ट उपाय अवश्य करें।

Lokeh] idk'kd] end lgno }kjk fi;dk fiVl] thn d fy, vkpk; fifVx il jkgrd l Niokdj] dk;ky; 'kkfUr/keh 756@3] vkn'k uxj] lHkk"k pkd ¼ifV;kyk pkd½] thUn&126102 ¼gfj0½ l idkf'krA lEikn % lgno

हितकारी प्रकाशन समिति हिण्डौन सिटी द्वारा पुनः प्रकाशित

डॉ० विवेक आर्य द्वारा सम्पादित दुर्लभ साहित्य अब जींद में उपलब्ध

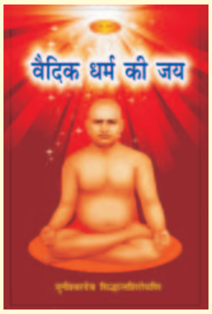

वैदिक धर्म की जय

(विविध आर्य सिद्धान्तों का संवाद रूप में प्रतिपादन

मूल लेखक :

पं० मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि

इस संस्करण के सम्पादक :

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ संख्या : १२०, मूल्य ८० रुपये

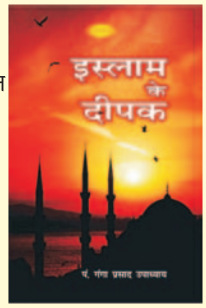

इस्लाम के दीपक

(मसाबीहुल इस्लाम का हिन्दी अनुवाद)

मूल लेखक :

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

वर्तमान संस्करण के सम्पादक

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ २६८, मूल्य : २०० रुपये

ऋषि बोध कथा

(ऋषि जीवन की गृहत्याग तक की प्रेरणायें)

मूल लेखक

स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

इस संस्करण के संपादक

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ ९८ मूल्य ८० रुपये

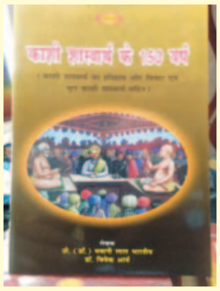

काशी शास्त्रार्थ के 150 वर्ष

(काशी शास्त्रार्थ का इतिहास और विचार एवं मूल काशी शास्त्रार्थ सहित)

लेखकद्वय :

प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ ७०, मूल्य ४० रुपये

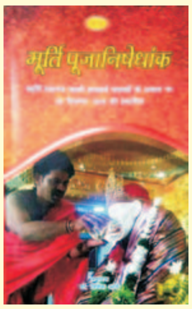

मूर्ति पूजा निषेधांक

(१९६९ में प्रकाशित आर्यमित्र साप्ताहिक का अंक, जिसमें मूर्ति पूजा के संबंध में अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के लेखों का संकलन है)

तत्कालीन सम्पादक : उमेशचन्द्र स्नातक

इस संस्करण के सम्पादक

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ : ११०, मूल्य : ६० रुपये

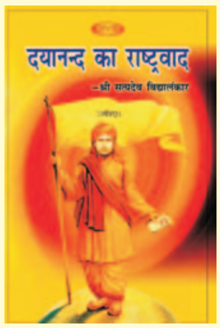

दयानन्द का राष्ट्रवाद

(मूल पुस्तक : राष्ट्रवादी दयानन्द)

मूल लेखक :

स्व० पं० सत्यदेव विद्यालंकार

वर्तमान संस्करण के सम्पादक :

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ : ९४, मूल्य : ७० रुपये

मूर्त्तिपूजा शंका समीक्षा

मूल लेखक : स्व० पं० राजेन्द्र जी अतरौली

वर्तमान संस्करण के सम्पादक

डॉ० विवेक आर्य

पृष्ठ २८, मूल्य : २० रुपये

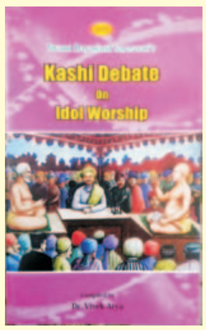

Kashi Debate On Idol Worship

Compiled By
Dr. Vivek Arya

Pages : 50, Price : Rs. 25

□ **जींद में प्राप्ति स्थान** : शांतिधर्मी कार्यालय, पो बा० नं० 19, मुख्य डाकघर जींद (हरि०) व्हाट्स केवल 9996338552। □ ये पुस्तकें सीधे **हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डौन सिटी,** राजस्थान (दूरभाष 70142 48036) से भी मंगाई जा सकती हैं। □ ये पुस्तकें buyvadicsahitya@gmail.com से **आनलाईन** भी मंगाई जा सकती हैं।

नोट : पुस्तकों का प्रेषण लॉकडाऊन खुलने के बाद ही संभव होगा।

शांतिधर्मी एक अद्वितीय पत्र है

इसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये स्वस्थ और सुरूचिपूर्ण सामग्री होती है।

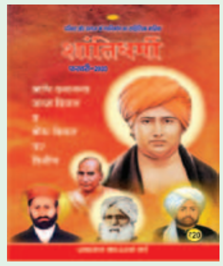

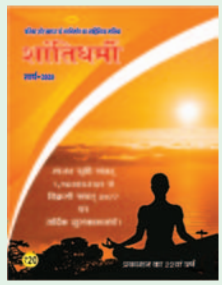

- ☆ **शांतिधर्मी** में धर्म-दर्शन के रहस्य, राष्ट्र व समाज की ज्वलंत समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों के श्रेष्ठ विचार होते हैं।
- ☆ **शांतिधर्मी** भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक दिखाता है।
- ☆ **शांतिधर्मी** वह मार्ग दिखाता है, जिसे पाने के लिये लोग भटक रहे हैं। परिवार में समाज में सह-अस्तित्व व अन्तरात्मा में सुख शांति का सन्देशवाहक है।
- ☆ **शांतिधर्मी** उस अध्यात्म का प्रचार करता है-जिसे अपनाने में देश-काल, जाति, मजहब, सम्प्रदाय की सीमाएँ आड़े नहीं आतीं। यह सच्चे ईश्वरीय ज्ञान का प्रचारक है।
- ☆ **शांतिधर्मी** स्वाध्याय भी है और स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी।
- ☆ **शांतिधर्मी** प्रत्येक श्रेष्ठ-धार्मिक-राष्ट्रप्रेमी-मानवतावादी-व्यक्ति के लिये एक विचार-सूत्र है। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवार का आभूषण है।

शांतिधर्मी पढ़िये-

अपने प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति सर्वांगीण दायित्वों को जानिये।

जीवन के जटिल व गूढ़ रहस्यों को सहज ही सुलझाईये।

मूल्य : एक प्रति : 20.00 वार्षिक : 200.00 10 वर्ष : 1500.00

शान्तिधर्मी कार्यालय
756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक)
जीन्द-126102 (हरियाणा)
फोन 9416253826, 9996338552
E-mail : shantidharmijind@gmail.com